Chap-8

अष्टम अध्याय

डा० भारती के कथा और नाट्य साहित्य में प्रतिबिम्बित भारतीयजीवन

अष्टम अध्याय

डा० भारती के कथा और नाट्य साहित्य में प्रतिबिम्बित भारतीय जीवन

आज के संक्रान्तिकालीन युग में परम्परित जीवन मूल्यों के विपरीत युगानुरूप एक नया दृष्टिकोण विकसित हो रहा है। दो परस्पर भिन्न जीवन- के प्रतिमानों की आपसी टकराहट के फलस्वरूप भारतीय जन-जीवन में जहां एक ओर प्रगतिशील जीवन-मूल्यों को आत्मसात् किया जा रहा है वहीं दूसरी ओर नवीन परिस्थितियों के आकस्मिक रूप से उत्पन्न होने के कारण जीवन के स्थिरीकरण की समस्या भी बलवती होती जा रही है।

आज का व्यक्ति अपने पारिवारिक सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक आदि जैसे क्षेत्र में तीव्रगत्या, परिवर्तित एवं विघटित परिस्थितियों और व्यवस्थाओं के बीच एक नूतन मानसिकता को अनुभूत कर रहा है। गावों की अपेक्षा नगरीय जन-जीवन तथाकथित नव अनुभूतियों के अधिक निकट है। अतः यह कहना न होगा कि आज जिस अनुपात में शहरी जीवन आधुनिक भौतिक सभ्यता व तदप्रसूत नव-जीवनानुभवों से प्रभावित हो रहा है उस आनुपातिक रूप से अद्यावधि भारतीय ग्रामीण जीवन प्रभावित नहीं हो पाया है। नवीन जीवन मूल्यों की दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर युग का विशेष महत्व है। भारतीय जन-जीवन में नवीन दृष्टिकोणों का सूत्रपात यहीं से हुआ है। साहित्य-कारों ने भी परम्परित वैचारिक जगत् की खोखली मान्यताओं एवं आस्थाओं को निर्मूल्य सिद्ध करने के लिए उन पर बौद्धिक कुठाराघात किया है। साथ ही नवीन धारणाओं की प्रगति कामना करते हुए उन्हें जन-जीवन में गौरवपूर्ण स्थान प्रदान करने के निमित्त अपनी कलम को भी तेज किया है। स्वातंत्र्योत्तर कालीन अधिकांश हिन्दी साहित्य तथोक्त नवीन जीवन धारा का ही प्रतिफलन है।

डा0 भारती जी ने अपने साहित्य में अपने परिवेशीय जन जीवन को बड़ी ईमानदारी और अनुभूतियों की सच्चाई के साथ अभिव्यक्ति प्रदान की है। एतद्विषयक सामाजिक दोषों एवं नवीन दृष्टिकोणों की ओर भी उनकी चेतना सदैव जागृत रही है। समूचे साहित्य में उनकी जीवन-दृष्टि नव मानवतापरक प्रगतिशील मूल्यों को ही आत्मसात करते हुए आगे बढ़ी है। हां, इतना अवश्य है कि शहरी जीवन की अपेक्षा ग्रामीण जीवन की संवेदनाएं एवं समस्याएं उनके साहित्य के व्यापक फलक पर प्रतिबिम्बित हो पाई हैं। डा0 भारती जी विशेषकर निम्न-मध्यवर्गीय एवं पददलित वर्ग की आत्मा के सच्चे कलाकार हैं। इन वर्गों की अभिशप्त करुणावस्था का एक एक आंसू उनकी लेखनी से टपककर अनमोल मोती बन जाता है।

अत: यहां उनके गद्य-साहित्य में प्रतिबिम्बित परिवेशीय जन-जीवन को उसकी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक आदि स्थितियों के साथ देखने-परखने का प्रयत्न किया गया है।

(क) सामाजिक परिवेश : पारिवारिक जीवन :

आज दो विभिन्न संस्कृतियों के संघर्ष के कारण पारिवारिक भावना के सूत्र कहीं शिथिल तो कहीं दो टूक होते जा रहे हैं। डा0 भारती जी के गद्य-साहित्य में परिवारों के टूटने की आवाज को स्पष्टत: सुना जा सकता है। साथ ही नये पारिवारिक संदर्भों का भी अंकन किया गया है। 'ये मेरे लिए नहीं' 'सावित्री नं0 2', 'बंद गली का आखिरी मकान' और 'गुलकी बन्नो' आदि ऐसी ही कहानियां हैं। 'सावित्री नं0 2' की सावित्री अपनी लम्बी बीमारी से इतनी व्यथित नहीं है जितनी वह अपने परिवार के कृत्रिम और बाह्योपचार जनित प्रेम के आडम्बर पूर्ण व्यवहार से पीड़ित जिस असम्बन्ध मानसिक ग्रंथि को अनुभूत करती है। उसकी मां वट सावित्री के

पवित्र पर्व पर उसे मृत्युप्राय: जानकर पूजा की थाली छुवाने का महज आडम्बर करती हैं। दूसरी ओर वही उसके पति से अपनी दूसरी बेटी सीता के विवाह की तैयारी भी करती है। पतिदेव भी उसकी बहन के साथ ही लुक-छिप कर प्रेम करते हैं। उसकी सास भी इसलिये उसे अपने माय के पति द्वारा भेज देने के लिए विवश करती है कि कहीं उसका रोग ससुराल वालों को न लग जाय। अत: पूर्वोक्त स्थितियों के कटु व कठोरतम अनुभवों से उसका मन पारिवारिक सम्बंधों से टूट जाता है। वह अपने ही परिवार में अपने को पराये से भी अधिक गिरी हुई जानकर परिवार के उन सदस्यों से आस्थाहीन हो जाती है। इसी प्रकार 'यह मेरे लिए नहीं' का दीनू भी अपनी मां के टूटते हुए परम्परित पारिवारिक संस्कारों, आचार-विचारों के पीछे सदैव बंद-आंखों से लगे रहने के कारण भीतर ही भीतर टूटता चला जाता है। मां को उसकी आवश्यकताओं का ध्यान नहीं है। परिवार के नाते-रिश्ते भी उसे खोखले प्रतीत होते हैं। जिन रिश्तेदारों को उसकी मां अपने ही खून के सगे मानती रहती है वे ही लोग आये दिन उसका मकान हड़प लेने का उपक्रम करते पाये जाते हैं। अत: इन सबमें मां को अपनी प्रगति में बाधक जानकर एक दिन वह पारिवारिक असंगतियों व उलझनों से हताश होकर घर से निकल पड़ता है। पुराने पारिवारिक आदर्श-भावना की विषाक्तता को 'गुल की बन्नो' शीर्षक कहानी में अंकित किया गया है। स्वतंत्रता पश्चात् भी ग्रामीण परिवारों की नारी परम्परित पारिवारिक प्राणशून्य संस्कारों के शिथिल बोझ को ढो रही है। 'गुलकी' इसी पारिवारिक आदर्शों से दबी हुई कुण्ठित भारतीय ग्रामीण नारी भावना का प्रतीक है। उसमें अपनी प्रतिकूल स्थितियों के विरुद्ध विद्रोह करते हुए आत्म-रक्षा की शक्ति व चेतना दृष्टिगत नहीं होती। जब उसे शादी के पांच बरस बाद मरा हुआ बच्चा पैदा हुआ। तो इसमें उस बेकसूर गुलकी को उसके पति ने सीढ़ी से ढकेल कर कुबड़ा बनाकर घर से बाहर निरुपाय व नि:सहाय छोड़ दिया। इस बीच उसे अनेक प्रकार की

1- बन्द गली का आखिरी मकान (गुलकी बन्नो) शीर्षक कहानी-पृ0 4

विसंगतियों काविषपान करना पड़ा। अंत में जब उसका पति पुन: उसे अपने स्वार्थवश रखैला की सेवा के हेतु लेने आया तब पतिप्रदत्त सभी यातनाओं को अपने ही दोषों के रूप में स्वीकार करती ७ हुई, और अंतत: पति को हीसर्वस्व समझकर उसके साथ इस आशा में चल पडती है कि 'फिर सन्तान होगी तो सौत का राज्य नहीं चलेगा।[1]

'बंद गली का आखिरी मकान' शीर्षक कहानी में असम्बन्धों की ट्रेजडी को पारिवारिक नई नैतिकता के परिवेश में उजागर किया गया है। मुंशी जी कायस्थ हैं और बिरजा ब्राह्मण। बिरजा पति परित्यक्ता नारी है। उसकी आधारहीन स्थिति में उसके दो पुत्र राघेराम और हरिया सहित मुन्शी जी ने उसे अपने एकाकीपन में आश्रय दिया था। इससे मानवतापरक एक नये प्रकार की पारिवारिक नैतिकता मुंशी जी और बिरजा के निश्छल और नि:स्वार्थ प्रेम-सम्बंधों के रूप में विकसित होती है। मुंशी और बिरजा का दाम्पत्य भाव तथा बिरजा के दोनों पुत्रों के प्रति मुंशी जी की वात्सल्य भावना नव पारिवारिक मूल्यों की स्थिति-रक्षा की दिशा में सामाजिक कटुताओं, विरोधों और संघर्षों से जूझती हुई मार्मिक कथा-सूत्र बुनती चलती है। भारतीय परिवार सौतेली मां के कटु व्यवहारों से भी चिर-परिचित रहा है। इसका एक चित्र 'सूरज का सातवां घोड़ा' की बुआ, तन्ना और महेसर दलाल के परिवार में मिलता है। तन्ना मां के अभाव में रोया करता है। सौतेली मां उसके साथ शत्रु तुल्य व्यवहार करती रहती है। उसकी मझली बहन दूसरे दिन बुआ और बापू से उसके खिलाफ शिकायतें करती है। तब बुआ (सौतेली मां) के कटु व्यवहारों का शिकार उसे होना पड़ता है। दूसरी ओर महेसर दलाल भी उसे बहुत मारता यहां तक कि तन्ना की पीठ में नील उभर आती थी और बुखार आता था।[2]

भारतीय परिवारों कीयह ट्रेजडी है कि जहां जहां सौतेली मां का राज

1- बन्द गली का आखिरी मकान(गुलकी बन्नो) शीर्षक कहानी-पृ0 16

2- सूरज का ५५ सातवां घोडा- पृ0 55

चलता हो वहां पूर्व संतान के लिए पारिवारिक कलह का वातावरण बना ही रहता है। कहीं पारिवारिक कलह व संत्रास का कारण परस्पर की कुशंका एवं आर्थिक अभाव भी रहता है। 'कुलटा' शीर्षक कहानी में पारिवारिक कलह लाली के दुश्चरित्र होने की आशंका से जन्म लेता है। उसका दूसरा पति नन्दराम उसके पहिले पति से प्राप्त पुत्र को पत्र लिखते देख उस पर तरह तरह की कुशंकाएं करते रहता है। उसे बुरी तरह मारते-पीटते रहता है और निष्पाप एवं निरीह उस लाली के पवित्र चरित्र को हरामजादी, कुतिया, कमीनी, बदजात, कुलटा की दृष्टि से देखता है।[1] उसका पारिवारिक जीवन भी कठोर नाटकीय यंत्रणाओं से ग्रसित है। नंदराम की पहली पत्नी से प्राप्त दो बच्चे बिमाता लाली के विरुद्ध अकारण गलत शिकायतें नंदराम से करते रहते हैं। इस पर नंदराम भी कह उठता- ' मैं कहे देता हूं कि घर में इन्हीं बच्चों के आराम के लिए लाया हूं। तुझे मां बन कर रहना हो तो रहो वरना याद रख----- भूखों मर रही थी अब चर्बी चढ़ गई है न। हड्डी-हड्डी तोड़ डालूंगा।[2] मानसिक कलह का एक रूप 'सूरज का सातवां घोड़ा' के मालिक मुल्ला में उपलब्ध होता है। वह स्वयं आर्थिक कठिनाइयों से जूझता रहता है। उसके विवाह और पढ़ाई आदि समस्याओं में आर्थिक कठिनाई बाधक सिद्ध होती हैं। भाई और भाभी अब पढ़ाई छोड़कर उसे नौकरी के लिए विवश कर देते हैं। इससे उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध हो जाता है। नये पुराने आदर्शों व विचारों की टकराहट से उत्पन्न पारिवारिक तनाव और टूटन के संदर्भों की झांकी 'राम जी की चींटी : राम जी का शेर ' केरीकेचर में होती है। पत्नी के धार्मिक रूढ़ि-निष्ठतापूर्ण व्यवहार प्रगतिशील पति के आधुनिक विचारों से मेल नहीं खा पाते। अतः परस्पर का मानसिक तनाव अंततः तलाक की स्थिति तक पहुंच जाता है।

1- चांद और टूटे हुए लोग 'कुलटा' क० पृ० 31

2- वही- पृ० 26

नारी-वर्ग : विविध परिपार्श्व :

डा0 भारती जी के गद्य-साहित्य में नारी के परम्परा से मुक्त एवं मुक्त दोनों ही प्रकार के चरित्रों की सृष्टि हुई है। उसमें जहां एक ओर परम्परागत गार्हस्थ एवं पातिव्रत भावना पाई जाती है वहीं उसमें उच्च शिक्षा और नारी-जागृति की स्वच्छंद चेतना भी परिलक्षित होती है।

गार्हस्थ एवं पातिव्रत-भावना :

-भारतीय संस्कृति के आधार पर पति-पत्नी केपारस्परिक प्रेम को गार्हस्थ जीवन के विकास में साधक माना गया है। डा0 भारती जी के नारी पात्रों में कहीं भी पातिव्रत भंग होने नहींपाया है। भारतीय नारी का आचार-मर्यादानिष्ठ पति-परायणा वाला रूप ही सर्वाधिक रूप से चित्रांकित हो पाया है। 'गुलकी बन्नो' की गुलकी पति द्वारा प्रताडित, उपेक्षित व परित्यक्त नारी है। वह अनेक प्रकार की विषम परिस्थितियों में भी अपनी चारित्रिक चारुता को बनाये रखती है। उसका पति प्रेम वहां दृष्टिगत होता हैजब पति द्वारा ले जाये जाने पर वह पति को पान का बीड़ा भेजती है। सखी उसे कसाईपति के घर जाने से रोकती है किन्तु वह यह कहकर पति के चरणों में गिर पड़ती हैकि 'पति ही उसका सर्वस्व है, लोक-परलोक उससे ही सुधरता है। भगवान उन्हें बनाये रखें। खोट तो हमीं में है।'[1] 'गुनाहों के देवता' की सुधा यद्यपि वैदिक प्रणाली से चन्दर सेव्याही हुई नहीं है तथापि मानसिक रूप से चन्दर को समर्पित है। वह उसके आदेशानुसार कार्यकरने में ही अपना श्रेय समझती है। इतना होने पर भी उसे सदैव इस बात का विवेक रहता है कि

1- बन्द गली का आखिरी मकान (गुलकी बन्नो) कहानी-पृ0 16

वह किसी की धर्म-पत्नी है। जब चन्दर एक बार सुधा से अपनी कामुकता का नाटक रचता है तब उसके पतिव्रता रूप की अनुभूति होती है। वह कहती है - 'चन्दर, मैं किसी की पत्नी हूं। यह जन्म उसका है। यह मांग का सिन्दूर उनका है। इस शरीर का श्रृंगार उनका है। मुझे गला घोंट कर मार डालो।'[1] 'सूरज के सातवें घोड़े' की जमुना भी सामाजिक विवशता के कारण अपने वृद्ध पति को पाकर खुश रहती है। वह अपनी सखियों में पति की प्रशंसा करती हुई कहती है कि 'चौबीसों घण्टे मुंह देखते रहते हैं। जरा सा कहीं गई बस सुनती हो, ओ जी सुनती हो, अजी कहां गई। मेरा तो नाक में दम है कम्मो ? मुहल्ला पडोसवाले देख देखकर जलते हैं।'[2]

सावित्री नं0 2 की 'सावित्री' की पातिव्रत भावना गुलकी बन्नो की भांति परम्परित संस्कारों को बन्द आंखों से स्वीकार कर लेनेवाली भावना नहीं है। उसमें एक जागरूक नारी की स्वस्थ बौद्धिक चेतना भी है। वह पति-पत्नी दोनों के कर्तव्यनिष्ठ आदर्शों का दाम्पत्य जीवन में समन्वय देखना चाहती है। उसकी लम्बी बीमारी इसी लक्ष्य की कसौटी है। वह अनुभूत करती है कि अब वह पति के गले में पड़ा एक अनावश्यक बोझ मात्र रह गई है। उसके पति का ठण्डा, कृतज्ञता व सौजन्य भरा दिखावा उसे यह अनुभूति दे जाता है कि असलीयत में तो वह मर चुकी है। उसके प्रति पति का यह आदर भाव भी वैसा ही है जैसा मृत शरीर के प्रति होता है।[3] इस बात को बड़े ही मार्मिक ढंग से उभारा गया है। नारी पतिदेव केलिए वर्षों से कठिन तपस्या करती चली आ रही है। उसने ही मृत्यु के प्रदेश से पतिदेव को अपने सतीत्व के बल पर कोटि-कोटि देवताओं से विद्रोह कर यम के हाथ से छुडा लिया था।

1- गुनाहों का देवता-(बा0सं0 1973) पृ0 313

2- 'सूरज का सातवां घोड़ा' पृ0 39

3- बन्द गली0 कहानी 'सावित्री नं0 2' - पृ0 24

मृत्यु कष्ट उन्हें नहीं झेलना पड़ा। कहीं कोई जटिलता नहीं थी।[1] 'सूरज का सातवां घोड़ा' की सती एक ऐसा नारी चरित्र है जो वक्त आने पर स्वयं अपने शील की रक्षा करती है। वह माणिक मुल्ला से कहती है 'एक बार एक बनिये ने साबुन की सलाखें रखवाते हुए कहा 'साबुन तो क्या मैं साबुनवाली को भी दूकान पर रख लूं।'[2] इस पर उसने फौरन अपना चाकू खोलकर कहा "मुझे अपनी दूकार पर रख और ये चाकू अपनी छाती में रख कमीने।"[1] इसी प्रकार जब महेसर दलाल उसके शराबी पिता की आर्थिक कमजोरी का लाभ उठाकर उस पर बलात्कार करने के लिए उद्धत हो जाता है तब वह अपने सील की रक्षा के लिए उसकी हत्या करने को सन्नध हो जाती है।[3]

भारतीय नारी की उस स्थिति का भी अंकन किया गया है जहां वह आर्थिक संत्रास के कारण अत्यन्त विवश होकर अपने चारित्र-शील की रक्षा करने में अपने आपको असक्षम पाती है। 'बीमारियाँ' शीर्षक कहानी की बेला एक ऐसा ही नारी चरित्र है। पति की बीमारी में जिस बेला ने गांव के एक ठाकुर से आर्थिक सहाय मांगने पर उसे बदनियत जानकर 'दूर हट पिशाच।' कहा था वही अब पति के मरने पर उसके अंतिम संस्कारार्थ धन पाने की लालसा में चेतनाशून्य हो जाती है। लेखक ने इसका यथार्थपरक करुण चित्र अंकित किया है। 'वह पत्थर की तरह खड़ी रही, पत्थर की तरह चारपाई पर गिर गई, पत्थर की तरह चूर-चूर हो गई। जब वह वहां से लौटी तो उसके हाथ में एक कागज का टुकड़ा था - नोट।'[4]

1- बन्द गली0 कहानी 'सावित्री नं0 2' पृ0 24

2- सूरज का सातवां घोड़ा- पृ0 84

3- वही- पृ0 89

4- दे0 चांद और0 'बीमारियां' शीर्षक कहानी-पृ0 109

नारी के पावन शील सम्बंधी पातिव्रत भावनाओं के अंकन के साथ ही उसकी पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और वैवाहिक विडम्बनाओं के विविध परिप्रेक्ष्य को भी सम्मूर्तित कियागया है। इस दृष्टि से 'गुलकी बन्नो' 'सावित्री नं02' 'बन्द गली का आखिरी मकान' शीर्षक कहानियों को 'गुलकी' 'सावित्री और 'बिरजा' आदि नारी पात्र विशेष उल्लेखनीय हैं। उनकी मानसिक यंत्रणाओं की दशा पर प्रकाश डाला गया है अत: यहां केवल संकेत भर कर देना ही आवश्यक होगा। इससे उनके व्यक्तित्व के गिरते, टूटते व खण्डित होते हुए रूपों की झांकी सहज ही हो जाती है।

ग्रामीण नारी की स्थिति रक्षा और जीवन विकास के मार्ग में सामाजिक रूढ़ियां और कुविचार सदियों से बाधक रहे हैं। इनका जितना भयंकर परिणाम नारी को भुगतना पड़ा है उतना पुरुष-वर्ग को नहीं। 'सूरज का सातवां घोड़ा' की जमुना अपने उभरते हुए यौवन की वासन्ती-वेला में ही वृद्ध पति को पाकर मन मसोसती हुई रह जाती है। 'बन्दगली का आखिरी मकान' की बिरजा पति के त्याग देने पर दो पुत्रों सहित अपने भरण-पोषण के अर्थ जब एकाकी व सहिष्णुता-प्रिय मुंशी जी के घर का आश्रय ग्रहण कर लेती है तो क्रूर व संकीर्ण विचारों का समाज उस पर लांछनों की झड़ी बरसाने लगता है। इससे एक दिन उसकी मां हरदेई के यह कहने पर कि 'मनसंघू ने निकालदिया तो दसासमेध डूब जाती। मनिकर्निका पर जल मरती। हमारी बुढ़ौती पर कुछ कलंक लगाने क्यों आयी ?' जैसी कटोक्तियां सुनकर जमुना जी में डूब-मरने के लिए तैयार हो जाती है।[1] इससे यह स्पष्ट है कि भारतीय नारी नारकीय यंत्रणाओं व विडम्बनाओं केसर्पपाश से ग्रसित स्थिति से यथावधि पूर्णतया मुक्त नहीं होपाई है।

1- कृ0सं0 बं0 ग0 आ0 म की कहानी 'बन्द गली का आखिरी मकान-

पृ0 85-86

स्वातंत्र्योत्तर कालीन नारी के बदलते हुए आधुनिक प्रगतिशील रूपों का अंकन भी डा0 भारती जी की लेखनी का विषय रहा है। 'सती - सावित्री' 'बिनती', 'हरदेई' 'छोटी बेटी' आदि ऐसे ही जागृतिशील नारी पात्र हैं। 'गुनाहों का देवता' की बिनती मामा डा0 शुक्ल के प्रेरित करने पर अयोग्य वैवाहिक सम्बंध के प्रति अपना आक्रोश व विद्रोह प्रकट करती है। सावित्री भी पति को दाम्पत्य भावना के एक समान स्तर पर देखने की कांक्षा रखती है। 'बन्द गली का आखिरी मकान' की हरदेई वक्त आनेपर अंधी-प्रवृत्तियों से ग्रस्त समाज को अपने ठेंगे पर रखती हुई सामाजिक खोखलेपन पर कटु प्रहार करती है। इसी कहानी में वर्णित 'छोटी बहू' तो म्यूनिसिपलैटी की मेम्बर है। उसमें आधुनिक राजनैतिक चेतना का उन्मेष पाया जाता है। 'नदी प्यासी थी' की कृष्णा हिन्दी से एम0 ए0 है। उसमें आधुनिक श्रृंगार-प्रसाधन प्रिय युवती की मनोवृत्ति सन्निहित है। सुधा, बिनती, सीता पम्मी, 'गेसू' आदि सभी सुशिक्षित नारी वर्ग की भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं। सुधा को तो उसका पति कैलाश राजनैतिक क्षेत्र में ले जाना चाहता है। 'सूरज का सातवां घोड़ा' की जमुना यद्यपि अधिक पढ़ी लिखी नहीं है किन्तु वह इलाहाबाद से निकलनेवाली सस्ते किस्म की प्रेम-कहानियों कीपत्रिकाएं पढ़ती रहती है। यदि शहर के किसी भी सिनेमाघर में नयी तसवीर आती तो उसके गाने की किताब माणिक मुल्ला से मंगवाती।[1] इससे उसमें आधुनिक किशोर-किशोरियों की रामेंटिक भावना के दर्शन होते हैं। सती अनपढ़ है किन्तु वह माणिक मुल्ला को किसी भी प्रकार आर्थिक सहायता पहुंचाकर अधिक पढ़ाना चाहती है।

इस प्रकार डा0 भारती जी के कतिपय नारी पात्रों में आधुनिक युग की शैक्षणिक व बौद्धिक चेतना उपलब्ध होती है।

1- सूरज का सातवां घोडा'-पृ0 26

वैवाहिक संदर्भों की अभिव्यक्ति :

भारतीय संस्कृति में सामाजिक संगठन व समानता के लिए विवाह को आवश्यक माना गया है। प्राचीन ऋषियों ने इसे सर्वोच्च धर्म की संज्ञा प्रदान की है। वस्तुत: पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम सम्बंधों से दया, सहानुभूति, सहिष्णुता, समता, ममता, त्याग, उपकार, सेवा आदि जैसे श्रेष्ठतर गुणों का विकास वैवाहिक दाम्पत्य जीवन द्वारा ही संभव हो सकता है।

आज पाश्चात्य शिक्षा-सभ्यता एवं भौतिक औद्योगिक व्यवस्थाओं का प्रभाव भारतीय गृहस्थाश्रम पर पड़ा है। इसके फलस्वरूप वैवाहिक पवित्रतावादी वैचारिक मान-मर्यादाओं एवं आचार-विचारों के बंधन टूटने लगे हैं। दाम्पत्य जीवन में ह्रासशील तत्वों के प्रवेश ने तनाव, अलगाव, एकाकीपन, तलाक जैसी समस्याओं को जन्म दिया है। इसके अतिरिक्त युगानुरूप नये वैवाहिक संदर्भों की दिशाएं भी प्रकाश में आई हैं।

डा० भारती जी के गद्य-साहित्य में परम्परित पवित्रतावादी वैवाहिक संदर्भों एवं तद्गत रूढ़ियों के साथ ही नये विचार-बिन्दुओं का भी आलेखन उपलब्ध होता है। 'गुनाहों का देवता' के डा० शुक्ला जाति-व्यवस्था व सांस्कृतिक समानता के लिए अन्तर्जातीय विवाह प्रणाली को प्रश्रय देते हैं। उनका मानना है कि 'जब अलग-अलग जाति में अलग-अलग रीति-रिवाज हैं तो एक जाति की लड़की दूसरी जाति में जाकर कभी भी अपने को ठीक से सन्तुलित नहीं कर सकती। और फिर एक बनिया की व्यापारिक प्रवृत्तियों की लड़की और एक ब्राह्मण का अध्ययन वृत्ति का लड़का, इनकी सन्तान न इधर विकास करसकती है न उधर'[1] किन्तु 'चन्दर' विवाह को व्यक्ति के दृष्टिकोण से देखता हुआ कहता है 'अगर दो विभिन्न जाति केलड़के-लड़की अपना मानसिक सन्तुलन ज्यादा अच्छा कर सकते हैं तो क्यों न विवाह की इजाजत दी जाये।[2]

1- गुनाहों का देवता- पृ0 63

2- वही- पृ0 63

वैवाहिक स्तर की समानता व योग्यता के प्रश्न को भी उठाया गया है। आज के युवक-युवती स्थायी सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए आपसी सम्बंधों में बौद्धिक व मानसिक स्तर के सन्तुलन को आवश्यक मानते हैं। चन्दर के उपर्युक्त विचार इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं। इसी प्रकार कैलाश के साथ सुधा का विवाह तो हो जाता है किन्तु वहां दोनों में मानसिक एकता का अभाव कुण्ठा की मनोवृत्ति धारण कर लेता है। कैलाश स्पष्ट शब्दों में कहता भी है - "मैं एक ऐसी पत्नी चाहता था जो मेरे राजनीति कार्यों में साथ दे सके।[1] साथ ही सुधा की यह स्वीकृति कि "मैं उन्हें शरीर तो दे सकी किन्तु मानसिक सुख नहीं।"[2] पूर्वोक्त तथ्य की कुण्ठाभिव्यक्ति ही है। इसी प्रकार 'नदी प्यासी थी' एकांकी नाटक में भी डा0 कृष्णा और उसकी भावी पत्नी पद्मा के जीवन में उठनेवाली मानसिक अतृप्ति दो असमान स्तर पर आधारित है। इसीलिए उसका मानसिक झुकाव कलाकार राजेश की ओर मानसिक सम्बन्धों की भावुकतापरक एकता के कारण हो जाता है।

डा0 भारती जी ने विवाह पूर्व प्रेम-सम्बंध को स्तरीय योग्यता की कसौटी के रूप में ग्रहण किया है। वे प्रेम-सम्बंधों को प्रवित्रतावादी सामाजिक कल्याण की दृष्टि से ही देखने के पक्षपाती हैं। इससे अनमेल विवाहों की अग्नि में झुलसती हुई भारतीय नारी की मुक्ति-कामना को उभारा गया है। आज का शिक्षित वर्ग वैवाहिक क्षेत्र में माता-पिता की इच्छा-सम्मति का उतना कायल नहीं रहा जितना वह अपनी इच्छा व स्वीकृति पर स्वतंत्र रहने की चेष्टा करता है। 'सूरज का सातवां घोड़ा' के माणिक मुल्ला के जीवन में आनेवाले जमुना,

---

1- गुनाहों का देवता- पृ0 329

2- वही- पृ0 340

सची,लीला आदि नारी पात्र विवाह पूर्व पवित्र प्रेम सम्बंधों की सामाजिक प्रतिष्ठा का ही प्रयास है। वे प्रेम के पवित्रतावादी आदर्श के पथ पर चलते हैं। किन्तु आर्थिक-सामाजिक विसंगतियां उनके प्रेम सम्बंधों को वैवाहिक रूप में परिणित होने नहीं देतीं।

वैवाहिक आयु-मर्यादा के प्रश्न को भी उजागर किया गया है। पम्मी के मतानुसार चौदह से चौंतिस बरस तक लड़कियों में अनुशासनता की कमी रहती है। अत: वे चौंतीस बरस के बाद शादियां करें जब वे अच्छा-बुरा समझने के लायक हो जायें अथवा हिन्दुओं के कायदों के अनुसार उसकी चौदह बरस के पहले ही शादी कर दी जाये और उसके बाद उसका संसर्ग उसी आदमी से रहे जिससे उन्हें जिन्दगी भर निबाह करना है।[1] इसी ईसाई जाति की पम्मी के माध्यम से डा0 भारती जी ने वैदिक प्रणाली-सम्मत वैवाहिक संस्था का अनुमोदन करवाया है। वह अपने समस्त अनुभवों के बाद भारतीय नारी के स्थायी पत्नीत्व को लक्षित करते हुए कहती है - 'हिन्दुओं के यहां प्रेम नहीं वरन् धर्म और सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर विवाह की रीति बहुत वैज्ञानिक और नारी के लिए सबसे ज्यादा लाभदायक है। उसमें नारी को थोड़ा बन्धन चाहे क्यों न हो लेकिन स्थायित्व रहता है, सन्तोष रहता है, वह अपने घर की रानी रहती है।'[2]

भारतीय प्रेम-पद्धति सर्वदा समाजोन्मुख रही है। यहां विवाह को 'सेक्स' की नियंत्रता के रूप में एक पवित्र धार्मिक करार दिया गया है। अत: वैवाहिक आदर्शों की दृष्टि से प्रेम को जब तक सफल व सम्पन्न नहीं माना जाता

1- वही- पृ0 86-87

2- वही- पृ0 309

जब तक कि वह वैवाहिक सूत्रों से अनुस्यूत होकर सामाजिक प्रतिष्ठा के योग्य सक्षमता प्राप्त न कर लें। पम्मी के उपर्युक्त विचार तथाकथित तथ्य की सम्पुष्टि कर देते हैं। सुधा के पवित्र प्रेम की भावना को अन्ततोगत्वा बिनती में चन्दर की भावी पत्नी के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास वासनाहीन प्रेम के वैवाहिक सम्बंधों की परिकल्पना का ही द्योतक है। डा0 भारती जी ने वैवाहिक स्तर पर प्रेम को स्थापित कर उसे असामाजिक होने से बचा लिया है। जीवन में केवल भावुकतावादी आदर्श यथार्थ की उपेक्षा कर समाज में स्थायीत्व नहीं प्राप्त हो सकता।

अत: यह कहना अनुचित न होगा कि डा0 भारती जी ने कृत्रिम संयम और मिथ्या आदर्शवाद से अपने प्रेम-पात्रों को बचा लिया है। प्रेम और विवाह दोनों की स्थिति में उनके पात्र यौन-उच्छृंखलता के शिकार नहीं होने पाते। पति के गृह पम्मी का जाना वासना से प्रेम के विद्रोह का ही परिणाम है।

डा0 भारती जी ने अनमेल-विवाह, पुनर्विवाह, एवं विजातिय विवाह की समस्याओं एवं 0000000000000 उनके परिणामों का भी चित्रांकन किया है। प्राय: पुनर्विवाह प्रथम पत्नी की मृत्यु अथवा प्रथम विवाह की असफलता के कारण ही किया जाता है। महेसर दलाल का दूसरा विवाह पहली पत्नी के मर जाने से उससे उत्पन्न सन्तान के पालन-पोषण के निमित्त होता है।[1] डा0 भारती जी विवाह में जाति-पांति की भेद परक भावना के कायल नहीं हैं। चन्दर विजातीय विवाह-सम्बन्ध पर बल देता है। जो डा0 शुक्ल प्रारंभ में जाति-विवाह के समर्थक थे वे ही सुधा की मृत्यु के बाद अन्तर्जातीय विवाह को मान्यता देने लगते हैं। इसी प्रकार 'नदी प्यासी थी' के डा0 कृष्णा और पद्मा का विवाह भी अन्तर्जातीय

1- सू0 सा0 घो0 पृ0 53

है। 'गुनाहों का देवता' का कैलाश स्वयं अन्तर्जातीय विवाह करना चाहता था।[1]

वैवाहिक प्रथाएं - मान्यताएं एवं नवीन दृष्टिकोण :

भारतीय परिवारों में वैवाहिक रूढ़-प्रथाओं व मान्यताओं का चित्रण विशेषकर 'गुनाहों का देवता' व 'गुलकी बन्नो' शीर्षक कहानी में किया गया है। वर पक्ष से कन्या को देखने आने की प्रथा भारतीय समाज में प्रचलित है। इस अवसर पर वरपक्ष से कोई अच्छी सी चीज़ वस्त्र, गहना, रूपया आदि कन्या को दिया जाता है। सुधा को इस प्रसंग पर उसके ज्येष्ठ शंकर ने मोतियों की एक सुन्दर माला प्रदान की।[2] कभी शादी के लिए अमुक प्रकार की शर्तें भी की जाती है। इससे कन्या पक्ष वालों का आर्थिक बोझ संकट का रूप धारण कर लेता है। जब डा० शुक्ला साहब ने विनती केविवाह के लिए कुछ अधिक समय तक ठहर जाने की इच्छा वरपक्ष के मामा दुबे जी से प्रकट की तो दुबे जी इस शर्त पर राजी हो गये कि 'अगहन तक हर तीज-त्यौहार पर लड़के के लिए कुरता-धोती का कपड़ा और ग्यारह रूपये नजराना जायेगा और अगहन में अगर ब्याह हो रहा है तो सास, ननद और जिठानी के लिए गरम साड़ीजायेंगी और जब जब दुबे जी गंगा नहाने प्रयागराज आयेंगे तो उनका रोचना एक थाल, कपड़े और एक स्वर्णमण्डित नारियल से होगा।'[3] पाणि-ग्रहण सम्बंधी वैदिक संस्कारों का रेखाचित्र भी सुधा के विवाह पर अंकित किया गया है।[4] शादी के समय जीजा जी के साथ कन्या की बहिनों व सहेलियों द्वारा हास्य-विनोद करना भी हिन्दू-समाज में प्रचलित है। सुधा के पति कैलाश ने चन्दर से जब उपस्थित कामिनी, प्रभा, लीला, आदि का परिचय पूछना चाहा तब विनती बोली 'बड़े लालची

1- गुनाहों का देवता- पृ0 180

2- ,, पृ0 182

3- वही- पृ0 103

4- ,, पृ0 200

मालूम होते हैं आप ? एक से सन्तोष नहीं है क्या ? वाह रे जीजा जी ।"[1] लड़की के विदा समय पर लड़की, उसके माँ-बाप और अन्य स्नेही-सम्बंधियों के रोने की प्रथा भी भारतीय परिवारों में विशेष उल्लेखनीय है । इसका संकेत 'गुलकी बन्नो' 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' व 'गुनाहों का देवता' आदि रचनाओं में किया गया है । जब लिली अपने विदा प्रसंग पर अपनी घनिष्ट मित्र कम्मो के कन्धे पर सिर रख बिलखती हुई रोती है तब कम्मो कहती है - 'जब बिदा होने लगे उस समय तो रोना ठीक है, वरना चार बड़ी-बूढ़ियाँ कहने लगती हैं कि देखो ? आज कल की लड़कियाँ ह्या-शरम धो के पी गयी हैं । कैसी ऊँट सी गरदन उठाये ससुराल चली जा रही हैं । अरे हम लोग थे तो रोते-रोते भोर हो गयी थी और जब हाथ-पांव पकड़ के मैया ने डोली में ढकेल दिया तो बैठे थे । एक ये हैं ? आदि ।"[2] बिदा-वेला की संस्कार-विधि का मार्मिक चित्रण 'गुल की बन्नो' कहानी में किया गया है । गुलकी को कोरे ही विदा होते देख मुन्ना की माँ निरमल की माँ से कहती है -"कहीं ऐसे बेटी की बिदा होती है । लाओ जरा रोली घोलो जल्दी से चावल लावो और सेन्दुर भी ले आना ।"[3] और फिर गुलकी को टीका लगाकर कुछ कपड़े और नारियल उसकी गोद में डालकर उसे चिपका लिया । मिरजा ने बिदा का गीत गाया -

"बन्नो डाले दुपट्टे का पल्ला
मुहल्ले से चली गई राम ।[4]

विवाह सम्बंधी अंध-मान्यताएं भी भारतीय समाज में अत्यधिक प्रमाण में पाई जाती है । ऐसी मान्यताएं प्रायः अयोग्य विवाह की पोषक रही हैं ।

1-	वही-	पृ० 200
2-	सूरज का सातवां घोडा-	पृ० 73
3-	गुलकी बन्नो-	पृ० 17-18
4-	,,	पृ० 19

'सूरज का सातवां घोड़ा' की जमुना की मां और 'गुनाहों का देवता' की विनती की मां के ऐसे ही विचार हैं। विनती केपति में शारीरिक खामी देखकर उसके मामा डा० शुक्ला साहब जब विनती को विवाह मण्डप से उठा लेते हैं तब विनती की मां (बुआ) चंदर से कहती है - "भइया जे के भाग में लंडे-लूला बदा होई ओ को ओ ही मिलीं। लड़कियां को निबाह करें चाही कि सकल देखें चाही। ---हम रहे तो जब विनती तीन बरस की हुई गयी, तब उनकी सकल उजेले में देखा रहा।"[1]

विवाह में कुल-वंशीय या जातीय-सम्बंधी ऊंच-नीच की भावना भी रूढ़ हो गई है। जमुना और तन्ना के विवाह में वंशीय मर्यादा बाधक सिद्ध होती है। जमुना की मां कहती है "तन्ना वैसे बहुत अच्छा लड़का है पर नीचे गोत का है और उसके खानदान में अभी तक अपने से ऊंचे गोत में ही ब्याह हुआ है।"[2]

वैवाहिक सुधार :

डा० भारती जी ने अपने पात्रों के माध्यम से विवाह-सम्बंधी सुधार व प्रगतिशील चेतना का मार्ग भी प्रशस्त किया है। विवाह के पीछे अनावश्यक टीमटाम दिखावे और व्यर्थ के खर्च को नकारा गया है। खानपान, साज-सज्जा, व दहेज आदि जैसी प्रथाओं के पीछे अंधाधुंध होनेवाले आर्थिक व्यय से मध्यवर्गीय परिवार ॠण के बोझ से मुक्त नहीं हो पाते। 'गुनाहों का देवता' का कैलाश और डा० शुक्ला साहब का परिवार आधुनिक सभ्य व सुशिक्षित समाज का प्रतिनिधित्व करता है। कैलाश परम्परित वैवाहिक मूल्यों से विद्रोह कर अपने नवीन विचारों

1- गुनाहों का देवता- पृ0 270

2- सूरज का सातवां घोड़ा- पृ0 56

की प्रतिष्ठा करता है। वैवाहिक तड़क-भड़क उसे कतई पसंद नहीं है। उसके बड़े भाई शंकर ने डा0 शुक्ला साहब को बताया कि "उसके लड़का एम0 ए0 है और अच्छे विचारों का है। उसने लिखा कि सिर्फ दस आदमी बारात में आवेंगे, एक दिन रुकेंगे। संस्कार के बाद चले जायेंगे। सिवा लड़की के गहने-कपड़े और लड़के के गहने-कपड़े के और कुछ भी नहीं स्वीकारेंगे।"[1]

परम्पराएं-रूढ़ियां तथा लोक-विश्वास :

अद्यावधि वैज्ञानिक व प्रगतिशील विकास की चेतना के प्रकाश में भी भारतीय समाज परम्परित खोखली रूढ़ियों एवं अंध-विश्वासों के अंधकार से मुक्त नहीं हो सका है। "यह सचमुच जाति, विवाह, सभी परम्पराएं बहुत ही बुरी हैं। बुरी तरह सड़ गयी हैं। उन्हें तो काट फेंकना चाहिए।"[2] समाज में प्रचलित विविध देवी-देवताओं में आस्थाओं, मनौतियों, अनीष्ट निवारण के लिए व्यवहृत विविध प्रयोगों तथा ब्राह्म-भोज, मृतक-भोज, व्रतोपवास, तीर्थस्थान, ज्योतिष-दर्शन, नजर-तावीज-ठण्डों व शकुन-अप-शुकन विचार आदि इसी सामाजिक-धार्मिक अंधी मान्यताओं एवं आचरणों के रूप में रूढ़ हो गये हैं। छूत-छात व ऊंच-नीच की संकीर्ण भावना भी तथाकथित विषाक्त रूढ़ि-निष्ठता का ही परिणाम है।

डा0 भारती जी के साहित्य में वर्णित समाज में ऊपर कथित मान्यताओं का चित्रण किया गया है। यहां आवश्यकतानुसार इनका विचार किया जायेगा।

1- गुनाहों का देवता- पृ0 139

2- वही- पृ0 273

जाति-भेद-परक रूढ़ि-निष्ठता :

हिन्दू-मुसलमान के बीच ऊंच-नीच की भावना भी हिन्दू-समाज में रूढ़ हो गई है। विनती के अपनी एक मुसलमान सहेली गेसू के घर जानेपर उसकी बुआ चन्दर से कहती है 'अबहिन तक विनती का पता नै और तुरक्व-मलेच्छन के ह्यिां कुछ खाय्यो लिहिस तो फिर हमरे ह्यिां गुजारा नहि ना ओ ब का।'[1] इसी बिचार से बिनती की बुआ कायस्थ जाति के चन्दर को ब्राह्मण जाति के सुधा के ज्येष्ठ शंकर के साथ बैठकर भोजन करने से रोकती है। किंतु जब चंदर भोजन के लिए तैयार नहीं होता तब शंकर ने बुआ की अंधी मान्यताओं पर मीठा व्यंग्य करते हुए कहा 'अजी वाह! मैं ब्राह्मण हूं, शुद्ध मेरे साथ खाकर आपको जल्दी मोक्ष मिल जायेगा। कहीं हाथ में तरकारी लगी रह गई तो आपके लिए स्वर्ग का फाटक फौरन खुल जायेगा। खाओ!'[2] इसी प्रकार बिरादरी की जातिगत रूढ़िवादिता के कारण चन्दर को विनती के व्याह में जाने से मना कर दिया जाता है। 'बन्द गली का आखिरी मकान' कहानी में मुंशी जी को भी राघोराम की शादी में इसीलिए नहीं जाने दिया जाता। निम्नवर्गीय पेशापरस्त ग्रामीण जातियों में भी जाति-बिरादरी की कट्टरता पाई जाती है। 'धुंआ' शीर्षक कहानी में खटिक, धोबी, नाई, भठियारे आदि जातियों की खानदानी परम्पराओं को परस्पर की छेड़-छाड़ व गाली-गलौज के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। 'गुलकी' के बिदा के समय घेघा बुआ कहती है -'अरे कोई जाति-बिरादरी की है का? एक लोटा में पानी भर के इकन्नी-दुअन्नी उतार के परजा-पजारु को दे दियो बस!'[3] 'मरीज़ नम्बर सात' शीर्षक कहानी हिन्दू-मुस्लिम की कट्टर भेद-भावना पर आधारित है।

1- गुनाहों का देवता- पृ0 103

2- वही- पृ0 179

3- ब0 ग0 आ0 म0 में 'गुलकी बन्नो' कहानी- पृ0 17

बंगाल के अकाल से भूख-पीड़ित बुढ़िया को हिन्दू और मुसलमान दोनों के धाबों से इसलिए भोजन नहीं मिल सका क्योंकि उनकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि वह हिन्दू है या मुसलमान।

अन्य सामाजिक मान्यताएं एवं अंध-विश्वास :

प्राय: गांवों में भूत-प्रेतादिक सम्बंधी मान्यता ग्रामीण मनोवृत्ति का अंग बन चुकी है। 'सूरज का सातवां घोड़ा' के माणिक मुल्ला को भूत का भयंकर भय है। गाय की कोठरी के पास जमुना की छाया में उसे भूत का आभास होता है। 'गाय के पास भूसेवाली कोठरी के दरवाजे पर कोई छाया बिलकुल कफन जैसे सफेद कपड़े पहने खड़ी है। इनका कलेजा मुंह को आने लगा। पर उन्होंने सुन रखा था कि भूत-प्रेत के आगे आदमी की हिम्मत बांधे रखना चाहिए और उसे पीठ नहीं दिखलानी चाहिए वरना उसी समय आदमी का प्राणान्त हो जाता है।'[1] 'चिड़ियां-पार्क और लालटेन' शीर्षक कहानी में भी निम्नवर्ग की तथाकथित मान्यता को उद्घाटित किया गया है। गांवों में प्रचलित जादू-टोने-मंत्र-तंत्रों में विश्वास की दृष्टि से 'बन्द गली का आखिरी मकान' शीर्षक कहानी विशेष उल्लेखनीय है। हरिराम अपने उस्ताद अफीमची से जादू-विद्या प्राप्त करने के मोह में फंस जाता है। वह उसे इसलिए अफीम देता था क्योंकि उसके पास उर्दू हरूफ बड़ा इन्द्रजाल असली तीनों हिस्सों में था। जिसमें टोपी लगा के लोप हो जाना, बिना विद्या पढ़े बन्द किताब का सब इलम मुंहबानी बताना, जिन्न बुलाना, और दूसरों की काया में प्रवेश करना जैसी अनेक प्रकार की जादू विद्याएं थीं।"[2] इसी प्रकार जब डाक्टर, वैद्य, हकीम आदि बीमार बिटौनी के इलाज में असफल सिद्ध हुए तब मुंशी जी द्वारा किसी के कहने पर गंगा पार झूंसी में रहनेवाले एक महात्मा जी के चरणों

1- सूरज का सातवां घोड़ा- पृ0 28

2- क0 सं0 बं0 ग0 आ0 म0 में 'बं0 ग0 आ0 म0' शीर्षक कहानी-पृ0 110

में उसको डालकर आश्वस्त होना भी इसी तथ्य की ओर संकेत है।[1] इसी कहानी में सियारों द्वारा खोदी गई गुफा सी खाई को देख बिटौनी अनुमान लगाती है 'यह पाताल लोक की सुरंग है। भगवान जी भी दरवाजे पर हैं। वहां किसी तरह हनुमान जी की एक मूर्ति भी पाई गई, तब बिटौनी ने मुंशी भैया को कहा "इसमें घुसो तो पाताल में निकलता है। तब मुंशी जी का विश्वास गहरा हो गया और बोले 'पाताल में नाग वासुकी होगा, तक्षक भी होंगे, शेषनाग होगा और उनके सब सिपाही अर्दली नाग होंगे।'[2] शनि की मारक दृष्टि में तेल और लोहे का दान कराने की ज्योतिषी-विधिपरक मान्यता भी इसी कहानी में उपलब्ध होती है।[3] 'नदी प्यासी थी' शीर्षक एकांकी में गांव की यह मान्यता कि जब नदी में बाढ़ आ जाती है, तब उसे बकरे की बलि चढ़ाना पड़ता है, तभी बाढ़ शांत होती है। और यदि बाढ़ अपने प्रलयंकर रूप ताण्डव-नृत्य करने लगती है तब कोई आदमी बाढ़ के पानी में चढ़कर अपनी खुदकुशी कर लेता है और तब बाढ़ का पानी अपने आप उतर जाता है।'[4] डा० कृष्णा इसे अंध-विश्वास और वाहियात कहता है। राजेश उसे सामाजिक खोखलेपन कहते हुए मानवता विरोधी प्रवृति मानता है।

हिन्दू समाज में मरनेवाले व्यक्ति के पीछे अनेक प्रकार की मृतक-क्रियाएं की जाती हैं। बिरजा के पति के मरने पर उसकी मामी कहती है कि उसके ज्येष्ठ पुत्र राघोराम को ही दाग देना पड़ेगा, और यदि ऐसा नहीं किया गया तो 'परते राक्षस बनके मुर्दा छाती पर बैठा रहेगा।'[5] इसी प्रकार और भी मान्यता है कि जब तक बेटा गया में पिण्ड-दान न करें, पितर-पक्ष में तर्पण न करें तो मृतक को नरक से छुटकारा नहीं मिलता।[6] मरते समय बेटे के हाथ से गंगा जल

1- वही- पृ0 115
2- ,, पृ0 132
3- ,, पृ0 132
4- नदी प्यासी थी-
5- बं0 ग0 आ0 म0 (क0सं0) की कहानी 'ब0ग0आ0म0 -पृ0 133
6- 'वही- पृ0 107

और तुलसी -पत्र देने की प्रथा भी मुंशी जी की अंतिम आशा के रूप में व्यक्त की गई है।[1]

ग्राम्य-जीवन की विविध वृत्तियां :

डा0 भारती जी के गद्य-साहित्य में निम्न-मध्यवर्गीय ग्राम्य मनोवृत्तियों एवं तद्गत विविध प्रवृत्तियों एवं समस्याओं का यथार्थपरक प्रतिबिम्बन हुआ है। इसमें ग्राम्य-समाज के स्वार्थ एवं शोषण, दिखावे-आडम्बर, एक दूसरे को लांछित-अपमानित करने की दुष्वृत्तियों को ग्राम्य-परिवेश में उभारा गया है। 'गुलकी बन्नो' 'यह मेरे लिए नहीं' आदि कहानियों में स्वार्थ एवं शोषणपरक नाते-रिश्तों पर अवलंबित समाज के खोखलेपन को उजागर किया गया है। देहाती नारी 'गुलकी' के शोषण के मार्मिक कथा-सूत्रों को घेंघा-बुआ, ड्राइवर-चाचा और स्वयं उसके पति जैसे स्वार्थरत पात्रों द्वारा बुना गया है। पति परित्यक्ता 'गुलकी' पर जब घेंघा-बुआ के चौतरे का कि जिस पर वह तरकारी की दूकान लगाती थी पांच महीने का किराया चढ़ गया तो बुआ ने उसे बुरी तरह से निकाल भगाया। इतना ही नहीं उसके पिता के पुराने मकान की अमुक वस्तुएं बेचकर उसे उजाड़ भी दिया।[2] किन्तु यही स्वार्थी व क्रूर समाज उसके पति के आने पर उसका मकान हथिया लेने के एवज में उससे ममता और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने लगता है। अब वे सब गुलकी और उसके मरद के प्रति बेटी और दामाद का सा व्यवहार करने लगते हैं।[3] और ये ही लोग उसका मकान उसके मरद से कचहरी में पक्के कागज पर लिखवाकर मिट्टी के मोल पड़ा लेते हैं। तब दोनों को जल्दी से बिदा करवाने

1- वही- पृ0 112

2- पृ0 10

3- वही- पृ0 14

की कोशिश करते हैं ।[1] 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' के रामधन और महेसर दलाल दो ऐसे पात्र हैं जो समाज की आर्थिक कमजोरी और धर्म भीरुता का लाभ लेकर अनैतिक आचरणों से अपनी काम-तृष्णा को शांत करते हैं। महेसर दलाल महज रुपयों-पैसों के लिए ही धर्म, देश, जाति, सन्तान और इन्सानियत आदि सभी के मूल्य को नकार सकता है। माणिक मुल्ला के शब्दों में 'दलाल होने के नाते उसकी सुनारों और सर्राफों से काफी जान-पहचान थी। अत: वह गिलट के कड़े और पायल पर पॉलिश कराकर और चांदी के गहनों पर नकली सुनहरा पानी चढ़वा कर लाता था और सत्ती को देने की कोशिश करता था।'[2]

'बन्द गली का आखिरी मकान' और 'चांद और टूटे हुए लोग' शीर्षक कहानी संग्रह की कतिपय कहानियों में खोखलेपन की प्रवृत्तियों पर आधारित ग्राम्य-मनोवृत्ति को उद्घाटित किया गया है। जो समाज मुंशी जी के नये परिवार को जाति-बिरादरी के बाहर मानकर उस पर अनेक आक्षेपों व कलंकों की वर्षा करते रहता है, बाहर से अपने को सुसभ्य दिखावे का आडम्बर रचता रहता है वही समाज भीतर से कितना पतित व खोखला है इस तथ्य की प्रतीति हरदेई के द्वारा कराई गई है। वह गिन गिन कर समाज के तथाकथित मुखौटों को इंगित करती हुई कहती है 'यह समाज पापी है, एक दिन उसे जमुना जी लील लेंगी। फिर घर में कौन करम नहीं होते। ये छोटी बहू का मरद कानपुर की एजन्सी में बैठा है, यहां ससुर के साथ ठेंठर नौटंकी होती है, उसे कौन नहीं जानता। बड़े घर के बड़े चलित्तर।---- यही पाण्डे जी कुआं पर दातौन करते थे और

1- वही- पृ० 15

2- सू० सा० घो० पृ० 87

बिरजा को आवाजा-तवाजा करते थे। हमनेलड़की बेची होती तो सारा मुहल्ला निहाल हो गया होता।----- हमने इज्जत नहीं बेची इसी का तेहा है न ?"[1] तथा कलंक के तहोमत में बिरजा को गंडासे से काटनेवाले उसके ही मामा बिशन मामा पर कटु फटकार करते हुए एक दिन पठान कहता है -`साला बिशनवा बड़े खां साहब की आरामगाह में अपनी बेटी भेज चुका है। मेरे सामने आंख नहीं उठा सकता। पिटे कुत्ते की तरह चला गया।`[2] यह वही समाज है जो मुंशी-बिरजा के परिवार को पूर्णतया नष्ट करने के लिए अनेक प्रकार की कुचेष्टाएं करता रहता है।[3] यह मेरे लिए नहीं` शीर्षक कहानी में इसी प्रकार समाज की एक दूसरे को बदनाम कर अपना स्वार्थ पूरा करने की लोभवृति को देखा जा सकता है। पुराने मकान को ही दु:ख का कारण मानकर दिनू के घर छोड़कर चले जाने पर समाज दिनू और उसकी मां के सम्बंध में दोगली बातें करता है। आधे घण्टे में सारे मुहल्ले में खबर फैल जाती है कि `दिनू ने मकान अपने नाम कराके अब मां जी से कह दिया कि तुम चाहे रहो चाहे भाड़ में जाओ।`[4] और दिनू के प्रति सहानुभूति का आडम्बर व्यक्त करते हुए वही समाज केलोग बोली बदलकर उसकी मां पर कटु व्यंग्य की चर्चा करते हैं -"आज बाबू जी जिन्दा होते तो क्या ऐसे तिनका तोड़कर चला जाता। कैसा बज्जर करेज है मां का। खड़े खड़े निकाल दिया। अरे मुहल्ले का लड़का है भैया, पता लगावो जाने कहां भूखा-प्यासा पड़ा होयगा।`[5] बड़ी महाराजिन भी इस स्थिति का लाभ लेते हुए दीनू की मां से बोलीं- `अरे मकान के पीछे क्लेश है तो बहू जी मकान हमें दे दें। वाजिब दाम ले लें। बेचारा लड़का दर-दर तो न भटके।[6] `धुआं` नामक कहानी में ऐसे

1- क0 सं0 `बन्द गली का आखिरी मकान` की `ब0 ग0आ0म0-कहानी-पृ086

2- वही- पृ0 120

3- वही- पृ0 87

4- `ये मेरे लिए नहीं `कहानी` दे0`ब0 ग0आ0म0(क0सं0) पृ0 67

5-6- वही- पृ0 68

लोगों की मनोवृत्ति का बोध होता है जो उपेक्षित व दयनीय जीवन यापन करनेवाले कोठापरस्त वेश्याओं के कष्टों को अपने मनोविनोद के रूप में देखते रहते हैं। एक पुरमजाक बनिये ने एक वेश्या को अठन्नी दी और अन्दर ले जाकर उसकी पोशाक में जलती छुछन्दर छोड़ दी। फिर तो उसकी आग से वेश्याओं के घर में आग लग जाती है। तब वहां ऐसे ही लोग एकत्र होते हैं 'जिन्हें इस बात की बड़ी निराशा थी कि कुछ मजा नहीं आया।'[1] दूसरे वे लोग थे जो कह रहे थे 'मूर्खों। अब सोकर उठे हो। जो मजा आग का देखना था वह देख लिया हमलोगों ने। अब यही क्या है?"[2] कुछ लोग आने-जानेवालों से आग का पूरा वर्णन उल्लास भरे शब्दों में कर रहे थे। तथाकथित लोगों की खूनखोर भेड़िये की सी मनोवृत्ति का उद्घाटन करते हुए लेखक के विचार हैं 'मैंने चारों ओर देखा। वही लोग थेजिनसे मैं रोज बोलता-बतलाता हूं। मेरे पड़ोसी, मेरे मुल्क के लोग। मेरे अपने लोग। हिंस्र जानवरों का सा उल्लास। आंखों की चमक। निर्ममता और क्रूरता।'[3] इसी प्रकार 'मरीज नं0 7' 'भूखा ईश्वर', 'मुर्दों का गांव', 'बच्चे की मृत्यु,' 'आदम का गोश्त', 'कमल और मुर्दे,' 'बीमारियां,' 'कफन-चोर' आदि कहानियों में सन् 1943 के बंगाल के अकाल से पीड़ित निम्न-स्तरीय लोगों के जीवन की मार्मिक और जीवन्त संवेदनाओं के अंकन के साथ ही उच्च वर्गीय लोगों की अमानुषिकतापरक वृत्तियों पर भी प्रकाश डाला गया है।

मध्यवर्गीय जीवन की कुण्ठा और विकृतियों का अंकन :

आज का मध्यवर्गीय समाज विशेषतया मूल्यों के टूटते-बनते युग का पथिक है। नये मूल्यों की अतिशय बाढ़ के कारण उसका अन्तर्मन अनेक प्रकार

1- क0 सं0-चांद और टूटे0 की 'धुंआ' कहानी-पृ0 44

2- वही- पृ0 44

3- वही- पृ0 45

की कुण्ठाओं -अभावों के द्वन्द्वों से ग्रस्त है। डा0 भारती जी ने मध्यवर्गीय जीवन में उत्पन्न होनेवाली तथाकथित कुण्ठा-विकृतियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाओं में मध्यवर्गीय आदर्शों पर आधारित व्यक्तिवाद के खोखलेपन का रहस्योद्घाटन करते हुए समाज-सापेक्ष स्वस्थ तत्वों कीप्रतिस्थापना का स्वर मुखरित हुआ है। 'सूरज का सातवां घोड़ा' लघु उपन्यास में निम्न-मध्यवर्गीय समाज की अनेक विध समस्या जन्य कुण्ठाओं को उजागर किया गया है। माणिक मुल्ला के जीवन में आनेवाले जमुना, सती , लिली आदि जैसे प्रेम-पात्रों की आर्थिक, पारिवारिक , सामाजिक व व्यक्तिगत जीवन की कुण्ठा-विकृतियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। इस जीवन के प्रगति-विकास में प्रेम से अधिक परंपरित खोखली मान्यताएं बाधक सिद्ध हुई हैं। 'गुनाहों का देवता' का चन्दर ध्वंसोन्मुखी वैयक्तिक आदर्शों पर आधारित मध्यवर्गीय पात्र है। वह सुधा को अपने से दूर रख कर प्रेम के प्लेटोनिक आदर्श पर जीना चाहता है। किन्तु एक दूसरी सीमा पर उसका अन्तर्मन इसके विरुद्ध विद्रोह कर उठता है वह अपने आदर्श की अधिक समय तक रक्षा नहीं कर पाता। उसके द्वारा किये जानेवाले गुनाहों पर गुनाह इसी अन्तर्मन की प्रतिक्रिया के परिणाम हैं। इसी प्रकार सुधा का भावुकता भरा आत्म-समर्पण भी जब अन्तर्मन की आवश्यकता को ठुकरा कर चलता है तो उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप उसे घुल-घुल कर मर जाना पड़ता है। 'नदी प्यासी थी' एकांकी नाटक में भी व्यक्तिगत प्रेमादर्श पर आधारित मध्यवर्गीय जीवन की कुण्ठित स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। प्रथम पद्मा डा0 कृष्णा से प्रेम करती है। उसका प्रेम डा0 कृष्णा की भावी पत्नी के रूप में स्थान पा लेता है। किन्तु इसी बीच उसके जीवन में राजेश का प्रवेश होता है। वह राजेश के बौद्धिक व्यामोहपूर्ण प्रतिमा कलित विचारों से प्रभावित होती है। बाहरी रूप से उसके द्वारा राजेश की की जानेवाली शुश्रूषा भी उसके अवचेतन को ही प्रकाशित करती है। अत: इससे डा0 कृष्णा में आत्मघाती मनोवृति उत्पन्न हो जाती है। वह पद्मा को सशंकित दृष्टि से देखता रहता है। दूसरी ओर राजेश ने अपनी जिन्दगी में एक

आदर्शात्मिक दृष्टिकोण बना रखा था । कामिनी उसकी प्रेयसी है । दोनों ने मिलकर यह तय किया था कि 'दोनों जिन्दगी भर अकेले रहें । प्रेम का प्रतिदान न लें और अलग-अलग रहकर अपने प्यार से दोनों एक दूसरे का व्यक्तित्व सम्हालते चलेंगे । किन्तु कामिनी प्रेम के प्रण को सम्भाल न सकी, वह धीरे-धीरे मुर्झाने लगी । अत: राजेश को उसके प्रति तिरस्कार होने लगा । वह स्वयं जिन्दगी से जान देने के लिए तैयार हो गया । पूर्वोक्त स्थितियों के कारण राजेश कृष्णा और पद्मा तीनों का जीवन प्यासी नदी के समान बन जाता है । तीनों ही अतृप्त प्रेम की बाढ़ में बहकर आत्म हत्या के लिए प्रेरित हो जाते हैं । राजेश को जिन्दगी से घृणा और तिरस्कार होने लगता है । आज के जीवन में जीवन के प्रति घृणा, ऊब, अस्पष्टता, दिशाहीनता, व आत्महत्यापरक मनोवृति प्रेम, अर्थ, समाज आदि के स्रोतों से पनपी है । लेखक ने इसे व्यक्ति-बोध के माध्यम से अभिव्यक्त किया है । 'हमारे दो चेहरे हैं । एक जो हम दुनिया को दिखाते हैं, वह है दया, ममता, स्नेह, प्रेम का चेहरा, एक जो हम खुद देखते हैं वह है क्रूरता, घृणा, हिंसा, प्रतिशोध का चेहरा और यही जिन्दगी की असलियत है ।"[1]

'चांद और टूटे हुए लोग' कहानी संग्रह की 'चांद और टूटे हुए लोग', 'पूजा', 'स्वप्नश्री और श्रीरेखा', 'शिंजिनी', व 'कला : एक मृत्युचिन्ह' जैसी कहानियों में एकान्तिक प्रेम और कला के व्यक्तिपरक सिद्धान्तों एवं आदर्शों पर आधारित प्रेमजनित कुण्ठाओं, अतृप्तियों, अभावों का बड़ा ही मार्मिक व सजीव चित्रांकन किया गया है । तथाकथित कुण्ठाओं का मूल कारण भी अर्थ, समाज व व्यक्तिगत प्रेमादर्श ही है । 'चांद और टूटे हुए लोग' कहानी के राजे और कुंवर ने अपने जीवन में एक आदर्श बना रखा था । 'देवता अपने मंदिर में रहें । वह केवल

1- दे० नदी प्यासी थी- (एकांकी) पृ० 14

दूर से पूजा अर्पित कर दें। ---- दूरी से उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। वे मानते हैं "उनका प्यार रोजमर्रा की जिन्दगी से उतना ही ऊपर उठकर है जितना यह चांद, और दूर होते हुए भी अन्तर के उतना ही समीप है जितना यह चांद।"[1] किन्तु तथाकथित रूमानी व वायवीय प्रेम के विकासमार्ग में सामाजिक समस्याएं आड़े आती हैं - "हमारे चारों ओर की व्यवस्था, वातावरण, परम्पराएं, सामाजिक ढांचा कुछ ऐसा है कि हम सब बेबस हैं और कायर हैं।"[2] परिणामत: एकांतिक प्रेम अटूट नहीं रह पाता। अन्य से विवाह सम्बंध स्थापित होते ही आत्मिक प्रेम, आस्था और निष्काम पूजा भावना निस्सार होने लगती है। व्यक्तित्व के दो टुकड़े हो जाते हैं। इस अन्तर्विरोधों और विषमताओं से छुटकारा पाने की छटपटाहट को निर्देशित करते हुए लेखक ने कहा है - "यह सब उसी के अपने टूटे हुए टुकड़े हैं जो प्रकाश के अभाव में छटपटा रहे हैं, जो एक नए प्रकाश की खोज में हैं, नए जीवन की खोज में हैं, नई व्यवस्था की ओर लड़खड़ाते हुए आगे बढ़ रहे हैं - तब चांद बादलों को चीरकर इन टूटे हुए लोगों पर, उनकी सारी टूटी हुई पीढ़ी पर, एक विराट मंगलमय आशीर्वाद की तरह झुक गया।"[3] इसी प्रकार धरती की प्यास की उपेक्षा कर महज कला-साधना को ही जीवन मानकर चलनेवाले कलाश्रित कलाकारों के खोखले व प्राणहीन विचारों पर नारी-प्रेम और जीवन में उसके महत्त्व का प्रतिपादन 'पूजा' स्वप्नश्री और श्रीरेखा' 'शिजिनी' आदि कहानियों में किया गया है। इन कहानियों में वास्तविक प्रेम की वास्तविकता को ठुकराकर चलने से किस प्रकार जीवन और कला अपूर्ण और निस्सार है के बोध को तद्जनित कुण्ठाओं की अन्तर्विरोधिनी स्थितियों पर उभारा गया है। 'शिंजिनी' शीर्षक कहानी का कलाकार किंगल अंतत: जीवन के आरोह-

---

1- चांद और टूटे हुए लोग-'चांद और टूटे हुए लोग' क0 पृ0 63

2- वही- पृ0 69

3- वही- पृ0 74

अन्तरोहपरक अन्तर्द्वन्द्वों को अनुभूत करते हुए यह स्वीकार कर लेता है कि "मैंने जीवन का सत्य पहचान लिया है। जीवन की पूर्णता में भी सत्य है और तृप्ति भी। संयम भी सत्य है और वासना भी।"[1]

नयी सामाजिकता और चेतना के नये स्वर :

आज बीसवीं शताब्दी का प्रगतिशील साहित्यकार व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, धर्म और संस्कृति की वास्तविक व सम्यक उन्नति के लिए परम्परित रूढ़ियों व मान्यताओं के खिलाफ अपनी आवाज को बुलन्द कर रहा है। डा0 भारती जी ने भी इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए आज के साहित्यकारों के दायित्वों पर प्रकाश डालते हुए अन्यत्र कहा है - "कलाकार को हर तरह की संकीर्णता, हर तरह के रूढ़िवाद के प्रति विद्रोह करना है। आज का कलाकार दाँते और गेटे बाल्जाक और ह्यूगो- डिकेन्स और शेले, टालस्टाय और डास्टावस्की, कबीर और तुलसी का प्रतिनिधित्व है। विद्रोह और सत्य की वह अग्निशिखा उसे पीढ़ियों से मिलती है और अपने को खतरे में डालकर उसे वह अग्निशिखा भविष्य के अन्धकार में स्थापित करनी है।"[2]

अत: अपने पात्रों के माध्यम से उन्होंने तथाकथित प्रगति की अग्निशिखा का प्रतिनिधित्व करने के लिए परम्परित रूढ़ियों का सख्त विरोध किया है। इस दृष्टि से उनके दो उपन्यास 'सूरज का सातवां घोड़ा' और 'गुनाहों का देवता' विशेष उल्लेखनीय हैं। माणिक मुल्ला रूढ़ियों और उसके परिणामों

1- चांद और टूटे हुए लोग- 'शिंजिनी' पृ0 208

2- दे0 प्रगतिवाद : एक समीक्षा (प0 सं0 1949) पृ0 216

की चर्चा करते हुए कहता है कि 'हम जैसे लोग जो न उच्च वर्ग के हैं, न निम्नवर्ग के, उनके यहां रूढ़ियां, परम्पराएं, मर्यादाएं भी ऐसी पुरानी और विषाक्त हैं कि कुल मिलाकर हम सबों पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि हम यन्त्र-मात्र रह जाते हैं। हमारे अन्दर उदार और ऊंचे सपने खत्म हो जाते हैं और एक अजब सी जड़ मूर्च्छना हम पर छा जाती है।'[1] इसीलिए प्रकाश भी कहता है 'किसी न किसी तरह नयी और ताजी हवा के झोंके चलने चाहिए। चाहे लू के ही झोंके क्यों न हों।'[2] जब तक पुरानी व्यवस्था द्वारा लादी गई सारी नैतिक विकृतियों और आरोपित झूठी मर्यादाओं को अस्वीकृत नहीं किया जायेगा तब तक स्वस्थ समाज की रचना संभव नहीं। आज के जीवन में यत्र-तत्र सर्वत्र आर्थिक-संघर्ष और नैतिक विश्रृंखलताओं से उत्पन्न अनाचार, निराशा और कटुता के अन्धड़ से समाज को मुक्त करने के लिए मानवता के सहज मूल्यों को पुन: स्थापित करने की प्रेरणा और ताकत भी उस अन्धकार से ही प्राप्त हो सकती है। हम अपनी पुरानी व्यवस्था से इतने चिपके हुए हैं कि उससे दूर होकर तनिक भी स्वतंत्र रूप से सोचना नहीं चाहते। और हमारी सामाजिक संस्थाएं स्वर्ग सी प्रतीत होने लगती हैं। किंतु डा0 शुक्ला के मतानुसार 'जब उनमें घुसो तब उनकी गंदगी मालूम होती है।'[3] अत: ऐसी बुरी तरह से सड़ी हुई परम्पराओं को निकाल फेंकना डा0 भारती जी के विचारानुसार आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।

ऊपर निर्दिष्ट तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि डा0 भारती जी का कलाकार अपने दायित्व-बोध को सदैव साथ लेकर चलता रहा है।

1- सूरज का सातवां घोड़ा- पृ0 52

2- वही- पृ0 52

3- गुनाहों का देवता- पृ0 274

पुरानी व्यवस्था की प्रतिक्रिया में युग-सापेक्ष मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा के स्वर को मुखरित करना ही उनकी रचनाओं का प्रमुख उद्देश्य रहा है।

(ख) धार्मिक परिवेश :

भारतीय समाज में सामाजिक रूढ़ियों व अंध-मान्यताओं की भांति ही धार्मिक क्षेत्र में भी अनेक प्रकार की विसंगतियों एवं बाह्याडम्बरों के विषाक्त परिणामों से गति व दिशाहीन अज्ञान व पंगु समाज की प्रगति के लिए उन्नसवीं शताब्दी में आन्दोलित सांस्कृतिक पुनर्जागरण की क्रान्ति के साथ ही नई धार्मिक चेतना का उदय हो चुका था। कल्पना व मिथ्याश्रित धर्म-भावना को मानवता के विकास में बाधक एवं खोखली सिद्ध करने के प्रयासों के द्वारा परंपरित जीवन दर्शन को नई-नई वैचारिक भूमियां प्राप्त हुई। इससे धार्मिक कट्टरता के स्थान पर विश्व-व्यापी मानवता के शाश्वत् मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा धार्मिक-सहिष्णुता के आधार पर की जाने लगी। स्वाधीन भारत में धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र की भावना भी तथाकथित सांस्कृतिक व धार्मिक विचारों का ही सुपरिणाम है।

धार्मिक रूढ़ियां एवं मान्यताएं :

डा० भारती जी ने अपने गद्य साहित्य में भारत की अज्ञान व अशिक्षित ग्रामीण जनता द्वारा आचरित धार्मिक संकीर्ण मान्यताओं, रूढ़ियों एवं बाह्याडम्बरों का यथार्थ चित्रण करते हुए तत्सम्बंधी अपनी नवीन विचारधारा का परिचय दिया है। 'राम जी की चींटी : राम जी का शेर' शीर्षक रेखा-चित्र

में भारतीय गांवों में प्रचलित धार्मिक प्रथाओं को उजागर किया गया है। ताई की धार्मिक -भीरुता के कारण उसके पति दारोगा ताऊ की 30 रुपये पेंशन में से 24 रुपये-चीटियों की राब, गौरियों की किनकी, गऊ माता का टिक्कड़, कौओं की रोटी, एकादशी का सीधा, कल्यानी मैया का सिंगार, भवानी माई की भीख, पांच कुंआरे-कुआरियों का भोजन, फूला-फांकी, औ सुबराती मियां की बख्शीश आदि में खत्म हो जाया करते थे।'[1] इसी प्रकार बैंक में एक साधारण स्थिति के क्लर्क जमुना के पिता की आमदनी तीज, त्यौहार, मुण्डन-देवकाज में हर साल चली जाती थी।[2]

'सूरज का सातवां घोडा' लघु उपन्यास में धार्मिक अन्धश्रद्धा एवं पाखण्डपूर्ण मनोवृत्ति पर प्रकाश डाला गया है। 'किस्मत की मार देखिए कि उसी समय मुहल्ले में धर्म की लहर चल पड़ी और तमाम औरतें जिनकीलड़कियां अनव्याही रह गयी थीं, जिनकेपति हाथ से बेहाथ हुए जा रहे थे, जिनके लड़के लडाई में चलेगये थे, जिनके जेवर बिक गये थे, जिन पर कर्ज हो गया था, सभी ने भगवान की शरण ली और कीर्तन शुरू हो गये और कण्ठियां ली जाने लगीं। माणिक की भाभी ने भी हनुमान-चौतरावाले ब्रह्मचारी से कण्ठी ली और नियम से दोनों वक्त भोग लगाने लगी।'[3] प्राय: समाज में आडम्बराश्रित साधु-संतों, पण्डे-पुरोहितों एवं ज्योतिषियों की कमी नहीं है। अज्ञान जनता के शोषण द्वारा उनके स्वार्थों का पोषण होता रहता है। नि:संतान जमुना सन्तान प्राप्ति की आशा में तथाकथित ढोंगी चेहरों के हाथ की कठपुतली बन जाती है। वह भाव-भजन में लग गई, रोज उसके यहां साधु-सन्तों का भोजन होने लगा। उसकी निष्काम भक्ति से प्रसन्न होकर साधु-सन्त

1- ठेल पर हिमालय- (द्वि0 सं0 1970) पृ0 107

2- सूरज का सातवां घोड़ा- पृ0 26

3- वही- पृ0 27

उसे आशीर्वाद देते । सन्तानवती भव ।[1] किन्तु उनकी वाणी के सिद्ध न होने पर अपनेवृद्ध पति के साथ एक ज्योतिषी के घर गई जिसने बताया कि उसे कार्तिक भर सुबह गंगा नहाकर चण्डी देवी को फूल और ब्राह्मणों को चना, जौ और सोने का दान करना चाहिए । उसने यथा-निर्दिष्ट आचरण-विधि का पालन किया । किंतु वहनि:संतान ही रही ।'[2] 'भूखा ईश्वर' शीर्षक कहानी में भी धार्मिक अंध-आस्थापरक मनौती की वृत्ति-भावना का चित्रण किया गया है । 'गांव के बाहर था एक छतनार कदम का पेड़ । उसके नीचे था एक अनगढ़ पत्थर का ढोंका । वह था उस गांव का ईश्वर । सुबह होते ही भोली किशोरियां मनोवांछित वर की आशा से उस पर जल चढ़ाती थीं, फूल बिखेरती थीं------कभी-कभी दुखियारी मातायें आती थीं जिनके बच्चे रोग-शय्या पर पड़े होते थे । वे अपना मैला आंचल खोलकर दिन भर की कमाई के पैसे चढ़ाती थीं, मत्था टेकती थी और बाद में गीली आंखें पोंछती हुई चली जाती थीं । a बहुत से उपासक थे, बहुत सी मनौतियां ।'[3] 'बंद गली का आखिरी मकान' शीर्षक कहानी में मुंशी जी की धार्मिक आस्था, मान-मनौतियों एवं पूजा-पाठ, तीर्थ-कीर्तन, करने की भावनाओं का अंकन कियागया है । मुंशी जी की बजरंग बली में इतनी आस्था है कि उन्होंने गांव में 'बजरंग बली स्वामी न्यू टेम्पुल कमेटी' की स्थापना भी की है । अटिक-खटिक मंगल को बजरंग स्वामी को भोग लगाया करते हैं । बिरजा भी मानती है कि 'हनुमान जी ने बिशन मामा का दिमाग ठीक कर दिया । बद्रीनाथ बड़े परतापी हैं पर बंधवा वाले (हनुमान जी) भी रच्छा करते हैं वखत पर ।'[4]

कतिपय स्थानों पर धार्मिक आडम्बरों तथा धार्मिक अनास्था का भी वर्णन उपलब्ध होता है । 'काला अवतार' शीर्षक कहानी में ईश्वर केअवतार की बात फैलाकर

1- 2- वही- पृ0 41

3- चांद और टूटे हुए लोग- 'भूखा ईश्वर' कहानी-पृ0 77

4- कहानी संग्रह बन्द गली0- 'ब0 ग0 आ0 म0 पृ0 111

अपने स्वार्थ का पोषण करनेवाले ढोंगी साधु-वर्ग की वृत्ति पर कटु व्यंग्य किया गया है। लेखक के शब्दों में "साक्षात् परम प्रभु स्वरूप योगी जो श्रद्धा से प्रणाम लेते हैं और दूसरों के हिस्से का दूध अपने प्याले में उडेल कर चम्मच से चीनी मिलाते हैं।"[1] इस महापुरुष की वेश-भूषा भी बड़ी विचित्र है - "मोटे खद्दर का लम्बा पीला चोगा, सर पर पीली मुरेडदार पगड़ी, पीला पाजामा जो नीचे जांघिये और ऊँचे पतलून के बीच की चीज थी, पैरों में मूंज की चप्पल, कमर में चोगे के ऊपर लिपटा हुआ मृग-चर्म और कन्धे में लटकता हुआ, कमण्डल के बजाय चमकदार नया अमरीकन थर्मस, चोगे में लगा हुआ सस्ता पांच-छ: रुपये का फाउन्टेनपेन, आंखों पर पन्द्रह आने का काला ठण्डा चश्मा और माथे पर पीला आर्यसमाजी ढंग का चन्दन"[2] इसी कहानी में विद्याडम्बर करनेवाले एक पूरन स्वामी के चरित्र पर भी व्यंग्य किया गया है। "उन्होंने पुराने ताड़ पत्रों से लेकर फ्रेंच और जर्मन के साहित्यिक रिसर्च(प्रेत-विद्या) तक के ग्रंथ पढ़ डाले हैं। और माडर्न (आधुनिक) तो इतने हैं कि पूछो मत?"[3] "यह मेरे लिये नहीं" शीर्षक कहानी में भी समाज के तथाकथित पाखण्डियों के आडम्बर को उघाड़ा गया है। पंडाल के विख्यात् भजनीक बेदवागीश जी ऐसे ही हैं। वे समाज को दिखाने के लिए प्राचीन संस्कृतिपरक शुद्ध आचरण-निष्ठता की शास्त्रोक्त बातें कहते रहते हैं। उपदेश देते रहते हैं। पश्चिमी फैशन और उच्छृंखलता के पीछे दीवाने आधुनिक नव युवक-युवतियों को कपिल-कणाद गौतम के देश को रसातल तक ले जानेवाले सिद्ध करते हैं। किन्तु लेखक के शब्दों में - "ऐसे ही कथावाचक लोग दृष्टांत सागर और भक्ति-दर्पण पढ़कर नवयुवकों के ज्ञान-सीमा का खण्डन करते हुए विद्वता की धाक जमाते हैं किन्तु ये ही लोग चेहरे पर पोमेड लगाकर मैटिनी शो का टिकट खरीदकर पिक्चर देखते रहते हैं।"[4]

1- क0 सं0 चांद और काला अवतार' पृ0 56

2- वही- पृ0 54

3- वही- पृ0 52

4- क0 सं0 'बन्द गली0 'यह मेरे लिए नहीं' - पृ0 65

धार्मिक कार्य में छूत-छात की भावना भी रूढ़ि-निष्ठ संकीर्ण मान्यता पर ही अवलंबित है। 'गुनाहों का देवता' की बुआ एक ऐसा ही नारी पात्र है। जब चन्दर पूजा की धोती पहने हुए बुआ को प्रणाम के लिए पैर छूने लगता है तब छु बुआ उस पर कटु फिटकार करने लगती है - "देख त्यों नै हम पूजा की धोती पहने हैं।"[1] और उसने सब अपवित्र जानकर अपने हाथ के पंचपात्र से वहां पानी छिड़का और जमीन फूंकने लगी।"[2]

तथोक्त धार्मिक आडम्बरों एवं उसके खोखलेपन के कारण आधुनिक पीढ़ी के शिक्षित लोगों में ईश्वर, धर्म, एवं तत्सम्बंधी आचरणों व मान्यताओं के प्रति निराशा, अनास्था, ऊब व खीज की भावना उत्पन्न हुई है। इस दृष्टि से 'यह मेरे लिए नहीं' 'सावित्री नं0-2' 'भूखा ईश्वर' आदि कहानियों को देखा जा सकता है। 'यह मेरे लिए नहीं' कहानी का दीनू ईश्वर को किसी दूर देश की दुर्लभ या परलोक-स्थित वस्तु नहीं मानता। वह उसे अपने जीवन में आनेवाले विविध लोगों की पवित्र, अकृत्रिम व निष्काम स्नेह-सेवा भावना में देखना चाहता है। वैसे अपने ही लोगों के स्वार्थ और आडम्बरपूर्ण व्यवहार से उत्पन्न कष्टों के क्षणों में वह ईश्वर से भी अनास्थावादी होने लगता है - "ईश्वर तो नहीं है, निश्चित नहीं है यह दीनू को दृढ़ विश्वास हो चुका था।"[3] 'वट-सावित्री-पूजन' भारतीय नारी की पातिव्रत भावना का पवित्र प्रतीक है। सत्यवान-सावित्री की पौराणिक कथा इस पर्व-पूजा से जुड़ी हुई है। इस दिन मां चाहती है उसकी बेटी को सत्यवान सा वर मिले।[4] विवाहित नारियां और कुंवारी कन्याएं भी अपनी मंगल कामना के लिए बड़ी श्रद्धा

1-2- गुनाहों का देवता- पृ0 92

3- क0 सं0- बन्द गली0 'यह मेरे लिए नहीं' - पृ0 56

4- ,, ,, 'सावित्री नं0-2' पृ0 23

से वड़ की पूजा-अर्चना करती हैं। इस प्रसंग पर सावित्री की अनास्थापरक भावना को बड़े मार्मिक ढंग से उजागर किया गया है। उसकी मां एक ओर उसकी लम्बी बीमारी से उसके जीने की आशा छोड़ उसके ही पति से अपनी दूसरी बेटी सीता के विवाह की तैयारी कर रही है तो दूसरी ओर इस दिन सावित्री से पूजा का थाल छुआवे छुआने का खोखला आडम्बर करती है। सावित्री को ऐसा पूजा-पर्व महज आडम्बर ही लगता है। वह बेचैन हो जाती है और मां के कहे को अनसुनी कर जाती है। 'भूखा ईश्वर' शीर्षक कहानी में लेखक ने धार्मिक अनास्था का यथार्थपरक चित्रांकन करते हुए मानवतापरक धर्म-दृष्टि की प्रतिस्थापना का प्रयत्न किया है। नव-मानवतावादी धर्म व सांस्कृतिक आंदोलनों ने ईश्वर को स्वर्ग और भव्य मंदिरों के कठघरों से निकाल कर उपेक्षित व दयनीय लोगों की भूख व आंसुओं में देखने का नया दृष्टिकोण अपनाया है। 'भूखा ईश्वर' अपने प्रतीकात्मक रूप में इसी तथ्य पर आधारित भाव-प्रधान कहानी है।

आर्थिक परिवेश :

औद्योगिकरण, महानगरों का विकास, दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई जनसंख्या, बाहरी आक्रमणों, प्राकृतिक प्रकोपों आदि का बहु व्यापक प्रभाव जन-समाज के आर्थिक स्तर पर पड़ा है। आज बेकारी, भुखमरा, रोग, संग्रह खोरी, आर्थिक अनीतियों एवं शोषण से उत्पन्न मानसिक ऊहापोह तथाकथित स्थितियों का ही विषाक्त परिणाम है। आज आर्थिक विकास के मार्ग में परम्परित रुढ़ियां एवं भौतिक-सुखों की अत्यधिक लालसाएं भी बाधक रूप सिद्ध हुई हैं। आज सामाजिक व्यवस्था को बदलने में अर्थ ही कारणभूत रहा है। औद्योगिक आयोगों व व्यावसायिक संस्थाओं के अस्तित्व में आने के कारण परम्परित ग्रामीण आर्थिक व्यवस्थाएं टूट चुकी हैं। आज आर्थिक विषमता से उत्पन्न वर्ग चेतना एवं वर्ग- संघर्ष की भावना भी आर्थिक अभावों का ही प्रतिफलन है। डा० भारती जी ने भी इस तथ्य

को स्वीकार किया है कि 'वास्तव में आर्थिक ढांचा हमारे मन पर इतना अजब सा प्रभाव डालता है कि मन की सारी भावनाएं उससे स्वाधीन नहीं हो पाती ।'[1]

डा0 भारती जी के अधिकांश साहित्य में ऊपर वर्णित स्थितियों से उत्पन्न आर्थिक वैषम्य, दुःखों, अनुचित शोषणों, आदि का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के स्वस्थ विकास के लिए 'अर्थ-व्यवस्था' के बदलने पर ही बल दिया है।

(ग) आर्थिक स्थिति-बोध : (विविध वर्ग)

निम्न-मध्य-वर्ग : 'सूरज का सातवां घोड़ा' उपन्यास में निम्न-मध्यवर्ग की आर्थिक स्थितियों का सजीव और मार्मिक वर्णन किया गया है। इस कृति में लेखक ने प्रेम, विवाह, परिवार व समाज के केन्द्र में 'अर्थ' को ही रखकर तदसम्बंधी समस्याओं के हल का उपाय निर्दिष्ट किया है। आर्थिक अभिशाप के कारण ही जमुना का पिता दहेज जुटा न सका। उसकी आशाएं मिट्टी में मिल गईं। 'आज नब्बे प्रतिशत लड़कियां जमुना की परिस्थिति में हैं।'[2] इसी प्रकार तन्ना का जीवन भी आर्थिक अभावों में दम घुट रहा है, उसका सूखकर दुबला हो जाना, बालों की असमय में सफेदी, झुककर चलना, दिल में दौरा पड़ना, घर में फाके पड़ना, आदि स्थितियों के संकेत से उसके आर्थिक-संत्रास का बोध हो जाता है। माणिक मुल्ला और जमुना के विवाह मार्ग में अर्थाभाव ही कारण बना। माणिक मुल्ला में एक कुण्ठा रह जाती है - 'सम्पत्ति की विषमता ही इस प्रेम का मूल कारण बनी। दोनों के घरों में एक एक गाय होती तो यह संयोग कैसे संभव था।'[3]

1- सूरज का सातवां घोड़ा- पृ0 52

2- वही- पृ0 34

3- वही- पृ0 32

अत: लेखक के मतानुसार 'प्रेम भावना की नींव आर्थिक सम्बंधों पर आधारित रहती है और वर्गसंघर्ष उसे प्रभावित करता रहता है।[1] परम्परित आस्थाओं व खोखले संस्कारों के पालन-पोषण के पीछे होनेवाले व्यर्थ के खर्चों ने भी आर्थिक स्थिति की रीढ़ तोड दी है। 'यह मेरे लिए नहीं' का पितृहीन बालक दीनु ट्यूशनों और कालेज की छात्रवृत्ति के आधार पर अपनी पढ़ाई, खर्च एवं घर की जिम्मेदारी को चलाने का प्रयत्न करता है। किन्तु पुराने संस्कारोंवाली उसकी मां उसकी सारी आमदनी को टूटे हुए पुश्तैनी मकान की दरारें भरने में लगा दिया करती है। इस स्थिति के कारण दीनू अथक परिश्रम के करने पर भी अपनी आर्थिक दुरवस्था से उपर उठ नहीं पाता। आज अनेक कारणों से निम्न-मध्य वर्ग की आर्थिक कठिनाई बढ़ गई है। बेकारी की समस्या भी इन कारणों में कारणभूत ज्वलंत समस्या है। जब राघोराम बजरंग स्वामी की कृपा से एफ0 ए0 पास हुआ तो उसे विवाह लायक जानकर मुंशी जी को उसकी नौकरी की चिंता ~~ए~~ होने लगी। वे कोर्ट-कचहरी में जाकर वकील साहब से उसकी नौकरी की बातें करते।"[2] इससे आज के शिक्षित बेकारों की समस्या का सहज ही ख्याल हो आता है। दूसरी ओर माणिक मुल्ला के भाई-भाभी, इसलिए उससे नाराज हैं क्योंकि उसकी पढ़ाई का खर्च उनकी शक्ति-सामर्थ्य के बाहर का हो गया था। अब वे विवाह-योग्य बन गये थे और घर की जिम्मेदारी पर आर्थिक बोझ भी बढ़ गया था। यही आर्थिक कठिनाई माणिक की आगे की पढ़ाई में बाधक बनी। और भाई-भाभी ने एक दिन कह ही दिया कि 'अब उन्हें पढ़ाई छोड़कर कहीं नौकरी करलेनी चाहिए। पढ़ने की कोई जरूरत नहीं।'[3] 'सावित्री नं0-2' कहानी की सावित्री के पितो और

1 वही - पृ. 32

2- क0 सं0 'बन्द गली0 की 'बन्द गली0' शीर्षक कहानी-पृ0 96

3- सूरज का सातवां घोड़ा- पृ0 88

~~3- क0 सं0 'बन्द गली0 पृ0 36~~

उसकी मां में आर्थिक अभाव ही गृह-कलह और मानसिक अशांति का कारण बनजाता है। उसके पिता एक लोवर ग्रेड के क्लर्क थे। अपर ग्रेड ~~अज~~ आते-आते तीन बच्चे हो गये थे। इस बीच आर्थिक तंगी के कारण पति-पत्नी में ठीक न बन पाता। उसकी मां पिता को हमेशा ताने देती थीं कि इस घर में आकर उसकी जिन्दगी बरबाद हो गई। न कभी पेट भर खाया, न मन भर कर पहना।"[1]

भौतिक -यांत्रिक ~~अथवा~~ और राजनीतिक विसंगतियों के कारण आज भले और ईमानदार आदमी को रोटी-रोजी के लिए अनेक प्रकार की संघर्षात्मक स्थितियों से गुजरना पड़ रहा है। विविध वर्ग के सरकारी कर्मचारियों की भांति ही आज का ~~छ~~ लेखनी -जीवी बौद्धिक वर्ग भी आर्थिक-विपन्नावस्था को भुगत रहा है। 'आवाज का निलाम' एकांकी नाटक का पत्रकार दिवाकर पूंजीवादी राजनीति पोषक नेताओं के इशारों पर चलनेवाले सेठ बाजोरिया को अपना पत्र बेचना नहीं चाहता। वह भीख मांगकर, फर्नीचर बेचकर, अपने खून से भी छापकर अखबार प्रकट करने का दृढ़ संकल्प करता है। किन्तु उसकी पत्नी की भयंकर बीमारी ने उसके ज्ञान, विवेक, शक्ति व संकल्प को सफल होने नहीं दिया। आर्थिक बाधा ने उसे परवश बना दिया। अब वह करे भी क्या? अपनी ईमानदारी और सच्चाई से लगे रहें या पत्र बेचकर अपनी बीमार पत्नी को बचाये। यही किंकर्तव्य की भावना उसमें आंतरिक द्वन्द्व का रूप ले लेती है। अंतत: वह अपनी संज्ञा शून्य स्थिति में कागजों पर दस्तखत कर पत्र सेठ बाजोरिया को बेच देता है।

आर्थिक विषमता एवं सामाजिक अनैतिकता ने ही वर्ग-संघर्ष व वर्ग-चेतना की भावना को जन्म दिया है। आज विविध वर्ग के कर्मचारियों द्वारा प्रवर्तमान हड़तालें, अनशन, हुल्लड़-दंगे, सभा-सरघस आदि के पीछे 'वर्ग-संघर्ष' की भावना ही

1- क0 सं0- 'बन्द गली' 0 पृ0 36

काम कर रही है। डा0 भारती जी के साहित्य में पूर्वोक्त चेतना का अधिक वर्णन नहीं हुआ है, किन्तु वे इसका हल नैतिक आचरणों की सच्चाई व ईमानदारी में ढूंढते हैं। चूंकि आर्थिक विषमता मूलत: सामाजिक अनैतिकता पर ही आधारित है। यही अनैतिकता के कारण ईमानदार तन्ना को अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा तो यूनियन ने उनकी नौकरी जारी रखने के लिए जोरदार संघर्ष किया।[1] मार्क्सवादी चेतना भी वर्ग-साम्य के प्रयास का ही प्रतिफलन है। डा0 भारती जी ने इस चेतना की मार्क्सवादी व्याख्या भी अपने पात्रों के माध्यम से इस प्रकार की है - "जमुना मानवता का प्रतीक है, मध्यवर्ग (माणिक मुल्ला) तथा सामन्तवर्ग (जमींदार) उसका उद्धार करने में असफल रहे, अन्त में श्रमिक वर्ग (रामधन) ने उसको नयी दिशा सुझायी।"[2]

निम्न-दलित एवं उच्च वर्ग :

डा0 भारती जी निम्न-दलित वर्ग की संवेदनाओं के एक सफल चितेरे हैं। उन्होंने अपने साहित्य में उच्च वर्ग के वैभव-विलासपरक जीवन के वर्णन के साथ ही दलित वर्ग की दयनीय स्थितियों का 'फोटोग्राफ' खींचा है।

उच्च वर्ग के अन्तर्गत सामन्तों, पूंजी-पतियों, रईसों, नेताओं, सेठ-साहूकारों आदि का समावेश होता है। इसी वर्ग के परिप्रेक्ष्य में डा0 भारती जी ने जहां एक ओर निम्न-दलित वर्ग की आर्थिक विडम्बनाओं का चित्रांकन किया है वहीं सेठ-साहूकारों व ठाकुरों के स्वार्थ-शोषण पर आधारित नीतियों पर करारा व्यंग्य भी कसा है। इस दृष्टि से 'चांद और टूटे हुए लोग' कहानी संग्रह की कतिपय कहानियां विशेष आलोच्य हैं। 'भूखा ईश्वर' कहानी में उच्च

1- सूरज का सातवां घोड़ा- पृ0 60

2- वही- पृ0 46

वर्ग के वैभव-विलासपरक जीवनांकन के आलोक में उनकी अमानुषिक वृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है। किस प्रकार अन्न, वस्त्र, और निवास रहित भिखमंगे लोगों को बुरी तरह ठुकराकर उच्च वर्ग के लोग ईश्वर की पूजा में धन को पानी की तरह बहा देते हैं। भूखा ईश्वर चारों ओर से अपने लिए दरवाजे बन्द देखकर जब मंदिर पहुंचा तो उसने देखा-"केसरी सुगंध, रेशमी दुपट्टेवाली किशोरियां, ठोस गहनों वाली वृद्धाएं, मोटे बनियेसभी पूजाके लिए जा रहे थे।"[1] और ईश्वर एक कोने में भयभीत सा खड़ा रहा, निगाह पडने पर सेठों ने उसे धक्के लगाकर निकाल दिया।[2] इसी कहानी में वर्णित अमीरी और गरीबी की विषमता के चित्र को भी देखिए -"मंदिर में भोग लग रहा था और ईश्वर भूखा-प्यासा, थकावट से चूर अपनी राह पर चला जा रहा था। सड़कों के दोनों ओर ऊंची-ऊंची हवेलियां थीं जिसके नीचे भिखमंगे भूख से कराह रहे थे। वे ईश्वर के ही प्रतिरूप थे-चीथडों के वेश में।"[3]

एक तरफ भूखा अकाल पडा है, दूसरी ओर पूंजीपति लोग रक्त-व्यापार व अर्थ-शोषण की नीतियों से मनचाहा फायदा उठा रहे हैं। "एक बच्ची की कीमत" कहानी में "रामी" की भूख और आर्थिक विवशता को बडे मार्मिक रूप में अंकित किया गया है। 500 रुपये मिलने की आशा में रक्त का क्रय-विक्रय करनेवाला एक पंजाबी उसकी भूख से मरती हुई लड़की को महज आठ आने में खरीद लेता है। इसी कहानी में एक बनिये की अर्थ-शोषणपरक वृत्ति को भी उद्घाटित किया गया है। उस बनिये ने चावल लेने आई हुई "रामी" की अठन्नी को गल्ले में रखकर, दूसरी खोटी अठन्नी देने का आरोप लगाते हुए कहा-"ठगने आई है बदमाश। खोटी अठन्नी बोहनी के वक्त।

1-2- क0 सं0 चाँद और0 -"भूखा ईश्वर" पृ0 81-82

3- वही- पृ0 82

बेईमानी तो देखो-----इसी अधर्म से तो यह अकाल पड़ा है।"[1] 'बीमारियां' शीर्षक कहानी में ठाकुरों की व्यभिचारपरक वृत्ति को उघाड़ा गया है। भूख की बीमारी से मरनेवाले पति की अंतिम दाह-क्रिया के लिए जब 'बेला' एक ठाकुर के आगे रुपया। रुपया। कहती हुई चारपाई पर पत्थर सी गिर गई तब उसे रुपये का नोट हाथ लगा।'[2] 'कफन चोर' कहानी में लखनवी नवाबों के ठाठ-बाट एवं उनके आतंकपूर्ण व्यक्तित्व की झांकी मिलती है। जाडे के दिनों में ठण्ड से मरती हुई वस्त्रहीन सकीना को उसके चाचा करीम वस्त्रहीनता का कारण बताते हुए कहते हैं - 'हम गुलाम और गरीब लोग तब भी नंगे थे और अब भी नंगे रहते हैं। जानती हो क्यों ताकि अमीर लोग हमारे नंगे कन्धों पर आसानी से हाथ जमाकर सोने और चांदी की सीढ़ियों पर चढ़ सकें ---"[3]

एक तरफ निम्न-दलित वर्ग भूख से बेमौत मर रहा है तब दूसरी ओर अमीर वर्ग अपनी खुशियों एवं स्वार्थ-साधनों के रंग में डूबा हुआ है- "सामने रहनेवाली बंगाली लड़कियां उसी खुशी और सजधज से कालेज गई, बगल के सेठ जी का रेडियो उतनी ही सुरीली आवाज में हापुड़, मेरठ, और दिल्ली के गेहूं के भाव बतला रहा था- किसी पर कुछ असर न हुआ।"[4] 'धुआं' और 'पार्क, चिड़ियां और सड़क की लालटेन' कमल और मुर्दे', 'आदमी का गोश्त' शीर्षक कहानियों में भी अर्थाभाव भूख और बीमारियों से मरनेवाले कंगाल भारतवासियों की मृत्यु-दारुणों का रोचक वर्णन किया गया है। इन सबसे इस तथ्य की प्रतीति होती है कि निम्न-दलित वर्ग की अप करुणावस्था को उत्पन्न करने, में अर्थ और अकालादि प्राकृतिक प्रकोपों

1- वही-, क0 सं0- 'बच्ची की कीमत' - पृ0 98

2- वही, ,, 'बीमारियां' - पृ0 109

3- वही- क0 सं0 'कफन चोर' पृ0 113

4- ,, ,, 'एक पत्र' पृ0 123

का उतना प्रबलतम हाथ नहीं रहा है कि जितना सामाजिक अनीतियों एवं भ्रष्टाचारों का । अतएव लेखक ने अपने साहित्य में बार-बार तद्-प्रवृत्तियों के पोषक साम्राज्य व सामन्तवादी लोगों को अपने कटुतम व्यंग्य का लक्ष्य बनाया है। अकाल में भूख से अधमरे आदमी का गोश्त खाने पर एक स्यार अपनी स्यार-पत्नी से कहता है - "आदमी का गोश्त खाने से शायद चर्बी जल्दी बढ़ जाती है। मुझे ताज्जुब होता था कि ये बनिये और सेठ इतने मोटे कैसे होते हैं। मैं समझता हूं शायद वे जिन्दगी भर आदमी का गोश्त खाते होंगे।"[1]

आर्थिक चेतना का स्वर :

एक जागरूक एवं प्रगतिशील साहित्यकार केवल समाज का यथातथ्य कोरा चित्रण करने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री नहीं समझता। किन्तु उस समाज की प्रगति की दिशाओं एवं सम्भावनाओं की ओर भी दृष्टिपात करता है। हां, यह अवश्य है कि एक साहित्यकार होने के नाते वह ~~xxxxx~~ अपनी कृतियों के रचनात्मक माहौल के द्वारा ही समाज का हित-साधन कर सकता है। डा0 भारती जी ने समाज को जो भी कुछ देना चाहा है वह अधिकांशत: अपने पात्रों के माध्यम से ही किया है।

परिवार, समाज, राष्ट्र आदि की प्रगति का रहस्य क्या है? व्यक्ति की दुर्गति में कौन-कौन से बाधक तत्व हैं आदि जैसे बुनियादी सवालों की नब्जों को उन्होंने बारीकी से पहचान लिया है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों (बलिया, आजमगढ़, बस्ती, बनारस) में होनेवाली बच्चों की मृत्यु-संख्या को ग्राफ बनाते समय

1- क0 सं0-'चांद और0-'आदमी का गोश्त' क0 पृ0 103

चन्दर महसूर कहता है कि - अर्थशास्त्र वह पत्थर है, जिस पर समाज के सारे भवन का बोझ है। और उसने निश्चय किया था कि अपने देश, अपने युग के आर्थिक पहलू को वह खूब अच्छी तरह से अपने ढंग से विश्लेषण करके देखेगा।"[1] अतः वह उक्त विश्लेषण से एक ऐसा हल खोज निकालना चाहता है जिससे मानव की बहुत सी समस्याएं हल हो जायेंगी और आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में अगर आदमी आज खूंखार जानवर बन गया है तो एक दिन दुनिया उसकी एक देवता बन सकेगी।"[2] आज की अर्थ-नीति या अर्थ व्यवस्था भी अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति का ही देशी-रूपान्तर बनती जा रही है। लेखक ने तथाकथित नीति को भी चन्दर के माध्यम से ही उजागर किया है। उसने रिसर्च के सिलसिले में पढ़ा था कि-"अंग्रेजों ने अपनी पूंजी लगाने और व्यापार फैलाने के लिए किस तरह मुर्शिदाबाद से लेकर रोहतक हिन्दोस्तान के गरीब से गरीब और अमीर से अमीर वाशिन्दे को अमानुषिकता से लूटा--- ऐसी राजनीति में जाकर लोग आदमीयत खो बैठते हैं।[3] प्रायः लेखक ने आर्थिक-स्थितियों में सुधार की भावना के लिए मानवतावादी दृष्टि को ही प्रश्रय दिया है। क्योंकि-"आदमी की जिन्दगी सिर्फ आर्थिक पहलू तक सीमित नहीं, जीवन को सुधारने के लिए सिर्फ आर्थिक ढांचा बदल देने भर की जरूरत नहीं है। उसके लिए आदमी का सुधार करना होगा। वरना एक भरे-पूरे और वैभवशाली समाज में भी आज के से अस्वस्थ और पाशविक वृत्तियोंवाले व्यक्ति रहेंगे तो दुनिया ऐसी ही लगेगी जैसे एक खूब सूरत सजा-सजाया महल जिसमें कीड़े और राक्षस रहते हैं।"[4] इसके लिए सामाजिक व्यवस्था को बदलना अति आवश्यक है। जब तक समाज में नैतिक विश्रृंखलताएं बनी रहेंगी तब तक आर्थिक संघर्ष एवं आर्थिक विषमता भी दूर नहीं हो सकती। 'सूरज का सातवां घोड़ा' में इसी तथ्य को जमुना की वैवाहिक विडम्बना के माध्यम से इस तरह उठाया गया है कि - "जमुना निम्न मध्य वर्ग की भयानक समस्या है। आर्थिक नींव खोखली है। उसकी वजह

1-2-3 गुनाहों का देवता- पृ० 60

4- वही- पृ० 60-61

से विवाह, परिवार, प्रेम, सभी की नींवें हिल गई हैं। अनैतिकता छाई हुई है। पर सब उस ओर से आँखें मूंदे हैं। असल में पूरी जिन्दगी की व्यवस्था बदलनी होगी।"[1]

डा० भारती जी ने श्रमिक वर्ग के आर्थिक सुधार के साधनों पर भी प्रकाश डाला है। उनकी दृष्टि में -"दुनिया का कोई भी श्रम बुरा नहीं। किसी भी काम को नीची निगाह से नहीं देखना चाहिए। चाहे वह तांगा हांकना ही क्यों न हो।"[2] इसी प्रकार गाय पालने की वेदोचित भावना को भी आर्थिक समृद्धि का कारण माना है। माणिक मुल्ला के शब्दों में -"हर घर में एक गाय होनी चाहिए, जिसमें राष्ट्र का पशु धन भी बढ़े, सन्तानों का स्वास्थ्य भी बने। पड़ोसियों का भी उपकार हो और भारत में फिर से दूध-घी की नदियां बहें।"[3]

(घ) राजनीतिक परिवेश :

डा० भारती जी के गद्य-साहित्य में स्वतंत्रता पूर्व एवं पश्चात् की राजनीतिक गतिविधियों का प्रतिबिम्बन किया गया है। उनके साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात हो जाता है कि उन्होंने किसी भी प्रकार के राजनीतिक दलीय -सिद्धान्तों व पूर्वाग्रहों को अपने साहित्य का प्रमुख लक्ष्य नहीं बनाया है। वे राजनीतिक घटनाओं और समस्याओं को अपनी अनुभूति के स्तर पर रखकर अपनी संपूर्ण ईमानदारी के साथ विभिन्न विधाओं के माध्यम से पाठकों केसमक्ष प्रस्तुत कर देते हैं। तात्पर्य यह है कि न तो वे अपनेसाहित्य को राजनीति का प्रचार साधन बनाकर ही चले हैं और न तो वे किसी भी प्रकार की गुटबन्दी में बन्द होकर चलना ही पसंद करते हैं। अपने साहित्य में राजनीतिक उपयोगिता के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा है कि -

---

1- सूरज का सातवां घोड़ा- पृ0 46

2- वही- पृ0 43

3- वही- पृ0 32

'जहां तक मेरा सवाल है और मैं अपने उपन्यास में राजनीति का समावेश करूं तो मैं दूसरे ढंग से करूंगा। मैं राजनीति को साधन बनाऊं, उपन्यास या साहित्य को साध्य। मैं राजनीतिक घटनाओं का इसलिए प्रयोग करूंगा कि वे रस परिपाक में सहायक थीं।'[1] इस उद्देश्य की दृष्टि से वे अपने प्रयास में काफी सफल भी हो पाये हैं।

अंग्रेजी शासन और उसके परिणाम- :

यह सर्व विदित है कि साम्राज्यवादी नीतियों पर आधारित ब्रिटिश शासन पराधीन भारतीयों के लिए नारकीय यंत्रणाओं से भी भयंकर था। सरकारी दफ्तरों, कार्यालयों, अस्पतालों, न्यायालयों आदि जैसी विविध संस्थाओं में उनके आतंक और जोर-जुलमशाही सत्ता का बोल बाला था। 'हिरनाकुस और उसका बेटा' शीर्षक कहानी में तथाकथित अंग्रेजी सरकार के कठोरतम अत्याचारों व मनमानी नीतियों को बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। वे किस प्रकार बेगुनाह और निरीह बच्चे तक को निर्दयतापूर्वक फांसी के फूले पर झुला दिया करते थे, वक्त पर सारे गांव के गांव जला देते थे, किन्तु किसी की क्या मजाल कि उनके विरुद्ध कोई जरा सी आवाज भी लगा दे- 'और क्या सरकार से लड़ना कोई हंसी खेल है। जब चाहे फांसी दे दे, जब चाहे जागीर दे दे।'[2] ब्रिटिश शासन में नौकरशाही मनोवृत्ति का विकास हुआ था। बड़े अफसरों की डाट-फटकार, सेवा-खुशामद व अधिकार भावना आदि का चित्रण 'सूरज का सातवां घोड़ा' लघु उपन्यास व 'यह मेरे लिए नहीं' कहानी में किया गया है। लेखक के शब्दों में -'सरकारी दफ्तरों में क्लर्क काम नहीं कर पाते, सुपरिन्टेन्डेन्ट बड़े बाबुओं को डाटते हैं, बड़े बाबू छोटे बाबुओं पर खीझ उतारते हैं,

---

1- दे0 प्रगतिवाद : एक समीक्षा- पृ0 124

2- क0 सं0- चांद और टूटे हुए लोग- 'हिरनाकुस और उसका बेटा-क0 पृ0 15

छोटे बाबू चपरासियों से बदला निकालते हैं और चपरासी गालियाँ देते हुए पानी पिलाने वाले को।"[1] इसी प्रकार रिश्वतखोरी पर आधारित पक्षपातपूर्ण मनोवृत्ति भी इस कुशासन में प्रवर्तमान थी। मुंशी जी सरकारी दफ्तर में हेड क्लर्क थे। वे बेहद सीधे व ईमानदार थे। किन्तु उनके सहकारी उनसे इसलिए नाराज रहते थे क्योंकि वे उन्हें रिश्वत नहीं देपाते थे। उनके अफसर भी उनसे इसलिए असन्तुष्ट थे क्योंकि आये दिन उनकी ईमानदारी उनके सारे दफ्तर में उलझन पैदा कर देती थी। मुंशी जी से जूनियर लोग अपने अफसरों व सहकारियों को घूसादि देते रहने के कारण सुपरिन्टेन्डेन्ट बन गये थे किन्तु मुंशी जी को एक के बाद एक तनज्जुली मिलती गई।[2] वेतन और मर्यादित समय से अधिक ड्यूटी करवाने की वृत्ति भी इस कुशासन की प्रमुख विशेषता थी। 'सूरज का सातवां घोड़ा' के तन्ना को इस वृत्ति-प्रवृत्ति का शिकार बनना पड़ा है।"[3]

पुलिस तंत्र के भ्रष्टाचार पूर्ण व्यवहार भी डा0 भारती जी की पैनी दृष्टि से नहीं बच सके। किस प्रकार पुलिस-कर्मचारी व अधिकारी वर्ग के लोग बेड़िनों (वेश्याओं) के साथ मधुर सम्बंध बांधते हैं और अपनी काम-वृत्ति की अंधी प्यास बुझाया करते हैं। शराब भी पीते हैं और रुपये भी एंठते हैं। किन्तु जब शराब के एक केस में एक बेड़िन रंगे हाथ पकड़ी गई, उसे थाने लाया गया, तब ये ही लोग कहते हैं- 'साली के कपड़े उतार कर दस जूते लगाओ।"[4] आखिर उसे एक एक करके सभी कपड़े उतार देने पड़े।

विदेशी सरकार की झूठी-शान-शौकत और नकली प्रभा-मण्डल मण्डित नीति

1- सूरज का सातवां घोड़ा- पृ0 51

2- क0 सं0 'बन्द गली-'यह मेरे लिए नहीं'- पृ0 61

3- सूरज का सातवां घोड़ा- पृ0 59-60

4- क0 सं0- 'बन्द गली0-'ब0 ग0 आ0 म0 कहानी-पृ0 126

को 'चांद और टूटे हुए लोग' कहानी संग्रह की कतिपय कहानियों में उद्घाटित किया गया है। बंगाल के अकाल से भारतीय जनता भूखों मर रही थी। तत्कालीन सरकार द्वारा जनता की रक्षा-आदि का कोई समुचित प्रबंध नहीं था। न सरकार द्वारा जांच कमीशन बैठाया गया न सरकारी सुविधाएँ रहीं और न तो सरकारी अस्पतालों में उन भूख से मरनेवाले लोगों का इलाज ही। इस पर भी अंग्रेजी सरकार अपने 'दैनिक समाचारों' द्वारा जनता की आंखों में धूल झोंक रही थी- कि 'बंगाल के इस अकाल में समस्त भारत प्रान्त और धर्म का भेद-भाव भुलाकर सहायता कर रहा है। --- इस सम्बंध में हम सरकारी अस्पतालों की मूल्यवान सहायता भी नहीं भुला सकते। हम इन सबके हृदय से कृतज्ञ हैं।"[1] 'भूखा ईश्वर' शीर्षक कहानी में सरकारी न्याय-तंत्र पर व्यंग्य किया गया है। उच्च वर्ग के धनी लोग सरकारी न्यायालयों के जजों (न्यायाधीशों) से मिलकर उन्हें अपने अधीन कर लेते हैं तब न्यायतंत्र उनके हाथ का खिलौना मात्र रह जाता है। भूखा ईश्वर अर्थात् जन साधारण के वर्ग ने जब अपने अभावों को प्रतीत कर उच्च वर्ग के खिलाफ विद्रोह का शंखनाद फूंका तो उसे गुनहगार समझकर गिरफ्तार कर लिया गया। बिना कुछ सुने जज ने सजा दे दी क्योंकि उन्हें शाम को सेठों के डिनर में जाना था। उसके बाद उसे जेल में भेज दिया गया। उसका विद्रोह तड़पकर रह गया।[2]

महात्मा गांधी-नीति-दर्शन एवं स्वतंत्रता आन्दोलन :

पराधीन भारत की स्वतंत्रता के लिए महात्मा गांधी जी ने सत्याश्रित अहिंसक आन्दोलनों को राजनीतिक व राष्ट्रीय चेतना का माध्यम बनाया था। चूंकि वे इस तथ्य से भलीभांति अवगत थे कि सत्ता व अधिकार सम्पन्न विदेशी शासकों का दिल

1- क0 सं0- चांद और0 'हिन्दू या मुसलमान' - पृ0 129

2- ,, ,, 'भूखा ईश्वर' - पृ0 85-86

मानवतापरक आदर्शों व सिद्धांतों द्वारा ही जीता जा सकता है। वे 'जैसे को तैसा ही' वाली नीति के समर्थक नहीं थे। कतिपय साहित्यकारों को तथाकथित नरम दलीय नीति में कुछ कमीपन की भावना महसूस हो रही थी। डा0 भारती जी ने इस बात को 'हिरनाकुस और उसका बेटा' कहानी में इस प्रकार व्यक्त किया है। जब एक अठारह वर्षीय निरीह बच्चे को अकारण फांसी दी जा रही थी, तब तो 'सैकड़ों खड़े थे बाहर झण्डे लेकर। जेलर ने कहा लाश नहीं मिलेगी बस वे बोले, लाश नहीं मिलेगी भाइयों, शान्ति से घर लौट चलिए, बोलो भारत माता की जय।'[1] उनमें इतना भी साहस नहीं था कि जेल के फाटक तोड़ देते और भीतर जाकर उसकी लाश ले आते।[2] इसी प्रकार गांधी जी के मौनव्रत, निग्रह, त्याग, देशसेवा, संयम और हृदय की शुद्धता जैसे उच्चादर्शों को 'युवराज' शीर्षक कहानी में बड़े ही व्यंग्यात्मक रूप से वर्णित किया गया है।

डा0 भारती जी ने पूंजीवादी व्यवस्था पर आधारित शासन-व्यवस्था को स्वतंत्रता के सर्वांगीण विकास में बाधक समझा है। 'कमल और मुर्दे' शीर्षक कहानी में इस बात की घोषणा की है कि - 'जब तक देश गुलाम रहेगा, भारत के गांवों में अकाल होता रहेगा, मुर्दों की फसल होती रहेगी, सामंती एवं पूंजीवादी व्यवस्था मुर्दों में कमलों की सी खूबसूरती देखा करेगी। अतएव ऐसे गुलाम भारत में सौन्दर्य, कला, जवानी और जीवन सभी कुछ मौत की तुला पर तुलते रहेंगे। वे मानव की भूखी और अतृप्त आत्माओं से अपने आनन्दोत्सव का पैशाचिक श्रृंगार करते रहेंगे।[3] ऐसी व्यवस्थाओं से प्रजातांत्रिक शक्ति कदापि अपना विकास नहीं कर सकेगी। अतएव अपनी रचना कृतियों में डा0 भारती जी ने इसी बात पर बल दिया है कि जब तक मानवता का गला दबोच देनेवाली क्रूर शासन-पद्धति का चक्र चलता रहेगा, तब तक राष्ट्र में

1-2 क0 सं0-चांद और0 'हिरनाकुस और उसका बेटा' कहानी-पृ0 18

3- ,, ,, 'कमल और मुर्दे0 पृ0 136

सच्ची स्वतंत्रता के सूरज की एक सुखद किरण भी हमारे लिए देव-दुर्लभ सी अलभ्य बनी रहेगी । अस्तु यह आवश्यक है कि अपनी वास्तविक स्वतंत्रता के लिए जन-विराट् में सोई हुई अग्नि की क्रान्ति-ज्वाला को हम जगा लें ।

स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक जीवन :

देश के स्वतंत्र होते ही उसके सम्यक् विकास के लिए अनेक प्रकार की मंगल कामनाएं व्यक्त की गई थीं । राष्ट्र द्वारा आयोजित अनेक प्रगतिपरक आयोगों व प्रयत्नों के द्वारा इस दिशा में कुछ सफलता भी मिली । किन्तु यह कहना अनुचित न होगा कि महात्मा गांधी जी ने जिन मानवोचित आदर्शों के आधार पर जिस आदर्श रामराज्य की कल्पना की थी, वह आज स्वतंत्रता के 29 वर्ष होने पर भी साकार न हो सकी । समकालीन साहित्यकारों ने स्वतंत्रता के विकास में रोड़े अटकानेवाले बाधक तत्वों की पीड़ा को भलीभांति अनुभूत किया है । ये बाधक तत्व हैं, राजनीतिक सत्ता-लोलुपता, वोट-संग्राहक वृत्ति, राष्ट्र सेवा की अपेक्षा, व्यक्ति-सेवा, अवसरवादिता, गलत प्रचार नीति, पूंजीवादी व्यवस्थाश्रित राजनीतिक भावना, दिखावा-आडम्बर आदि । स्वतंत्र राष्ट्र में उपर्युक्त तत्वों ने राजनीतिक संतुलन की धुरी को हिला दिया है । परिणाम स्वरूप आजादी का सुख गूलर के फूल सा कल्पित बन गया है । डा0 भारती जी ने अपने साहित्य के माध्यम से ऊपर वर्णित राजनीतिक कमियों और दुर्बलताओं पर प्रकाश डालते हुए स्वतंत्र राष्ट्र के संपूर्ण विकासार्थ दिशा-निर्देशन भी किया है ।

आज स्वतंत्र भारत में अंग्रेजों की साम्राज्यवादी मनोवृत्ति यत्र-तत्र सर्वत्र किसी न किसी रूप में पोषित हो रही है । सरकारी आदि संस्थानों में प्राप्त भ्रष्टाचारों के मूल में इसी तथ्य की अनुभूति होती है । अतः 'गुनाहों का देवता' का कैलाश सरकारी नौकरी का विरोध इसलिए करता है क्योंकि -तत्कालीन भारतीय

सरकार और ब्रिटिश सरकार में ज्यादा अंतर नहीं था।"[1] केन्द्रीय शासकों में वैभव-विलास एवं सत्ता के रुवाब की भावना भी अतिशय बढ़ चली है। जब चन्दर को केन्द्रीय सरकार में ऊंची पदवी प्राप्त हो गई तब राजमुकुट और राष्ट्रीय ध्वज से सुशोभित मोटर पर खानसामे के साथ पहली बार चढ़ने के समय उसे राजसत्ता के मद की अनुभूति होने लगी - "जिन लोगों के हाथ में आज शासन सत्ता है, मोटरों और खानसामों ने उनके हृदय को इस तरह बदल दिया है। वे भी तो बेचारे आदमी हैं। इतने दिनों से प्रभुता के प्यासे। बेकार हम उन्हें गाली देते हैं।"[2]

स्वाधीनता पश्चात् राजनीतिक जीवन में अधिकार-लिप्सा अति प्रबल होती जा रही है। आज कहने को तो तंत्र प्रजा का है किन्तु सत्तायें शासक-वर्ग के हाथ में रहती है। अतः शासक लोग अपने सत्ताधिकारों का मनमाना उपभोग कर जनता के दिमाग और उनकी चेतना-शक्ति को हथिया लेते हैं। इस रूप में वे प्रजातंत्र के बहाने साम्राज्यवादी शासन-प्रथा का ही पोषण कर रहे हैं।[3] ऐसे शासकों में आत्मा अर्थात् मानवता नहीं होती जो दूसरों के सुखों पर अपने अधिकारों की छाप और धाक जमाते रहते हैं। 'नीली झील' एकांकी का एक तांत्रिक पात्र आगन्तुक (नेता) से कहता है - "तुमने राजदण्ड से अपनी आत्मा की हत्या कर दी, उसे सोने के मकबरे में दफन कर दिया। तुम्हारे राजदण्ड पर गाढ़े खून के दाग हैं। तुम्हारे सोनेपर मक्खियां बैठी रही हैं।"[4] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आज का व्यक्ति किस प्रकार यांत्रिक-भौतिक सुखों की चका-चौंध में अंधा बनकर मानवता के सहज मूल्यों की हत्या का पाप करते रहता है। इस रूप में वह मानवात्माहीन दैत्य ही है।

1- गुनाहों का देवता- पृ0 361

2- दे0 वही- पृ0 365

3- दे0 ए0 सं0 नदी प्यासी थी- 'नीली झील' पृ0 42

4- ,, ,, वही- पृ0 44

समाज के कतिपय पूंजीपति वर्ग के लोग ऐसे हैं जो सरकारी तंत्र व उसकी गलत-नीतियों के खिलाफ सच्चाई की आवाज बुलन्द करनेवाले साहित्यकारों व पत्रकारों आदि की जबान को किसी प्रकार खरीद कर पूंजीवादी-राजनीति का पोषण करते हैं। 'आवाज का निलाम' एकांकी में तथाकथित मनोवृत्ति-चालित सेठ बाजोरिया के चरित्र को उद्घाटित किया गया है। अवसरवा-दी भावना भी आज के राजनीति प्रधान युग की देन है। इसी एकांकी में पूर्वोक्त अवसरवादी नीति पर प्रकाश डाला गया है। सेठ बाजोरिया एक अवसरवादी पूंजीपति हैं। जब देश परतंत्र था तब वे अपने अखबारों में अंग्रेजी सरकार की तरफदारी करते रहे, उसका विज्ञापन छपवाते रहे। जब सन् 1942 में गृहमंत्री को पुलिस हथकड़ियां पहनाकर लेजा रही थीं तब तो वे उनसे दौड़कर गले नहीं मिलते और अपने अखबारों में छाप रहे थे कि 'कांग्रेस-वाले गुण्डे हैं'[1] किन्तु जब देश स्वतंत्र हुआ तो वे भारतीय शासकों की नीतियों के समर्थक बन गये। जब चैटर्जी ने गृहमंत्री के झूठे वक्तव्य पर टिप्पणी लिखी तब वे उन्हें डाटते हैं।[2]

गांवों की नयी राजनीतिक चेतना :

यद्यपि महानगरों की भांति गांवों में प्रजातांत्रिक सुखों का विकास सुलभ नहीं हो पाया है। तद्वत राजनीतिक चेतना के आलोक से भी ग्रामीण जनता अपरिचित रही है। तथापि चाहे वह राजनीतिक क्षेत्र में अपनी सक्रिय चेतना का परिचय न दे पाई हो किन्तु वह उससे प्रभावित अवश्य ही हुई है। गांवों में विशेषकर सभा-जुलूसों, नारों, पार्टियों एवं चुनावों का प्रभाव पड़ा है। 'गुलकी बन्नो' शीर्षक कहानी में इसका यथार्थपरक वर्णन हुआ है। पिछले दिनों म्यूनिसिपैलिटी का चुनाव हुआ था। उसी का गांव के बच्चों पर प्रभाव पड़ गया। वे गुलकी के

1- ए0 सं0- नदी प्यासी थी- 'आवाज का निलाम' - पृ0 59

2- वही- पृ0 58

विरुद्ध घंघा बुआ की हिमायत करते और नारा लगाते" घंघा बुआ को वोट दो।" उनके जलूस का वर्णन भी लेखक के शब्दों में देखिए - "चाराहे पर तीन-चार बच्चों का जलूस चला आ रहा था। आगे-आगे दर्जे ब में पढ़नेवाले मुन्ना बाबू नीम की सण्टी को झण्डे की तरह थामें जलूस का नेतृत्व कर रहे थे, पीछे थे मेवा और निरमल --- जुलूस के कप्तान ने नारा लगाया -

"अपने देश में अपना राज
गुलकी की दूक ान बाईकाट।"[1] इसी प्रकार लीडर बनने की राजनीतिक कांक्षा का वर्णन भी 'बन्द गली का आखिरी मकान' शीर्षक कहानी में हुआ है। इसमें चुनाव की नीति को भी देखा जा सकता है। जब राघोराम पढ़-लिख कर एफ0 ए0 पास हो गया तो उसके विशन मामा की इच्छा है कि 'चार बरस बाद इसे मनिसबिल्टी की निम्मरी के लिए खड़ा करेंगे। सारा चौक, मीरगंज, बहादुरगंज, जहां-जहां नाच-गान होता है सारा वोट बिशन मामा दिलावेंगे।"[2] गांव की महिलाओं में भी लीडर बनने की धुन सवार हुई है। 'बन्द गली का आखिरी मकान' की बिटौनी एक ऐसी ही नारी है।

डा0 भारती जी ने राजनीतिक परिस्थितियों के अंकन के साथ ही राष्ट्रोन्नति की सम्भावित दिशाओं पर भी प्रकाश डाला है। आज के स्वाधीन भारत का प्रत्येक नागरिक अपने राष्ट्र की अक्षय सम्पत्ति है, बल है। देशोन्नति न केवल राज-नेताओं, अधिकारियों एवं विभिन्न पार्टियों द्वारा ही संभव हो सकती है वरन् इसके लिए प्रत्येक नागरिक का भी उतना ही परमोच्च कर्तव्य है क्योंकि आज राष्ट्र को नेता नहीं, अपितु किन्तु एक सच्चे देश भक्त नागरिक की आवश्यकता है। 'गुनाहों का देवता' का चन्दर इसी भावना का प्रतिनिधित्व करता है। वह आदर्शपूर्ण सपने को साकार

1- क0 सं0 बन्द गली0 'गुलकी बन्नो' कहानी- पृ0 2-3

2- वही- 'बन्द गली का आखिरी मकान' पृ0 121

करने के लिए सोचता है कि- 'आदर्श राष्ट्र या आदर्श विश्व किसी भी एक राजनीतिक क्रांति या किसी भी विशेष पार्टी की सहायता मात्र से नहीं बन सकता। उसके लिए आदमी को अपने को बदलना होगा, किसी समाज को बदलने से काम नहीं चलेगा।"[1] अतः वह व्यक्ति-संस्कार में निरन्तर लगा रहता है। और यदि व्यक्ति के संस्कारों में परिवर्तन नहीं हो सका तो चारित्रिक अधःपतन की बाढ़ एक दिन समस्त राष्ट्र को डूबा ही देगी। चन्दर के विचार से- 'जरा सी आजादी अगर मिलती है हिन्दोस्तानियों को तो वे उसका भरपूर दुरुपयोग करने से बाज नहीं आते और कभी भी ये लोग अच्छे शासक नहीं निकलेंगे।"[2]

निष्कर्ष :

डा० भारती जी के कथा एवं नाट्य साहित्य के आद्योपान्त अध्ययन के आधार पर यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि उन्होंने आधुनिकतावादी सम-सामयिक स्थितियों एवं प्रतिक्रियाओं के आलोक में परम्परित खोखली व्यवस्थाओं तथा मान्यताओं का खण्डन करते हुए मानवतावादी एवं बौद्धिक चेतना सापेक्ष विचारों कीप्रतिस्थापना के स्वर को मुखरित किया है। यह कहना न होगा कि वे भारतीय परिवेश के बदलते हुए रूप-रंगों, विविध संवेदनाओं की गंधों एवं अन्तर्विरोधी अनुभूतियों के दुहरे-तिहरे आस्वादों के जीवंत कलाकार हैं। भारतीय जीवन की गहराइयों में पैठ कर ही वे उसकी समस्याओं का हल प्रस्तुत करते हैं। इस दिशा में उन्होंने अपनी युग-सापेक्ष प्रगतिशील दृष्टि का ही परिचय दिया है। हां, यह अवश्य है कि उनकी आधुनिक चेतना-संवलित प्रगतिशीलता, जहां एक ओर अपने देश और काल के दायित्वों को ग्रहण करती है वहीं वह इसके परे शाश्वत् मानव मूल्य

1- गुनाहों का देवता- पृ0 61

2- वही- पृ0 62

के स्तर को भी छूती है। इसी संदर्भ में उनकी विवादास्पद आधुनिकता पर प्रकाश डालते हुए डा० रामदरश मिश्र जी ने कहा है -"भारती की आधुनिकता की पहचान किसी अवधारणा के स्तर पर नहीं की जा सकती। उसे व्यक्ति और परिवेश के सम्बन्धों से बनते नयेअनुभवों की गहरी स्वीकृति, जाने-पहचाने जगत् के किसी विशिष्ट बिन्दु या स्तर के उद्घाटन और वस्तुवादी किन्तु मूल्यवादी दृष्टि अन्विति में ही पहचाना जा सकता है।"[1]

1- 'आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि' - पृ० 173